प्रकाशक–
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
ऑ० सम्पादक दिगम्बर-जैन व प्रकाशक
जैनमित्र तथा मालिक, दिगम्बर जैन
पुस्तकालय, चंदावाड़ी–सूरत।

मुद्रक–
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
"जैनविजय" प्रेस, खपाटिया चकला,
तासवालाकी पोल–सूरत।

प्रस्तावना।

हमारे धर्ममें अनेक प्रकारके व्रत करनेका कहा गया है तथा उन सब व्रतोंकी विधि व उसके करनेसे क्या फल मिलता है, उसको बतानेवाली उन व्रतोंकी कथाएं प्रचलित हैं, परंतु वे एकसाथ न मिलनेसे बड़ी असुविधा थी जिसको दूर करनेके लिये हमने ७ वर्ष हुए गुजराती, हिन्दी व मराठी भाषाकी गद्य अथवा पद्य कथाएं संग्रहित करके सरल हिन्दी भाषामें पं० दीपचंदजी वर्णीसे लिखवाकर प्रकट की थीं, वह बिक जानेपर उसमें फिर उन्हींसे आवश्यक संशोधन कराकर इसकी यह दूसरी आवृत्ति प्रकट की जाती है। इसमें कुल ३० कथाओंका संग्रह हो सका है। यदि और भी कथाएं मिल सकेंगी तो आगामी आवृत्तिमें वे भी सम्मिलित की जायगी। बिलकुल निःस्वार्थ वृत्तिसे ऐसे कई ग्रन्थोंका संपादन करनेवाले पं० दीपचंदजी वर्णीका उपकार हम कभी नहीं भूल सकते।

हरएक भाई व बहिन समयानुसार कोई न कोई व्रत करते ही रहते हैं तब उस व्रतकी कथाका पाठ अवश्य २ करनेकी आवश्यकता होती है इसलिये इस ग्रन्थकी एक २ प्रति हरएक मंदिर व गृहमें होनेकी आवश्यकता है। आशा है यह कथा-ग्रन्थ व्रतादि करनेवालों तथा सामान्य स्वाध्याय करनेवालोंको भी बहुत उपयोगी होगा।

वीर सं० २४५२
वैशाख सुदी १५
चंदावाड़ी-सूरत।

जैनजाति सेवक-

मूलचन्द किसनदास कापड़िया।

कथानुक्रमणिका।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

जैन व्रत कथासंग्रह ।

पीठिका ।*

प्रणमि देव अर्हंतको गुरु निर्ग्रन्थ मनाय, नमि जिनवाणी व्रत कथा कहूं स्वपर सुखदाय ॥

अनन्तानन्त आकाश (अलोकाकाश) के ठीक मध्यभागमें ३४३ घन राजू प्रमाण क्षेत्रफलवाला अनादिनिधन यह पुरुषाकार लोकाकाश है जो कि तीन प्रकारके वातवलयों अर्थात् वायु (घनोदधि, घन और तनुवातवलय) में घिरा हुआ अपने ही आधार आप स्थित है।

यह लोकाकाश ऊर्ध्व, मध्य, और अधोलोक, इस प्रकार तीन भागोंमें बटा हुआ है। इस (लोकाकाश) के बीचों बीच १४ राजू ऊंची और १ राजू चौडी लम्बी चौकोर स्तम्भवत्, एक त्रस नाडी है। अर्थात् इसके बाहर त्रस जीव (दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रिय जीव) नहीं रहते हैं। परन्तु एकेन्द्रिय जीव स्थावर निगोद तो समस्त लोकाकाशमें त्रस नाडी और उसमें बाहर भी वातवलयों पर्यंत रहते हैं। इस त्रस नाडीके ऊर्ध्व भागमें सबसे ऊपर तनु वातवलयके अंतमें समस्त कर्मोंसे रहित, अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्यादि अनंत गुणोंके धारी, अपनी अपनी अवगाहनाको लिये हुए अनन्त सिद्ध भगवान विराजमान हैं। उससे नीचे अहमिन्द्रोंका निवास है, और फिर सोलह स्वर्गोंके

---

* यह पीठिका आदिसे अंत तक प्रत्येक कथाके आरम्भमें पढना चाहिये। अर्थात् इसे पढनेके पश्चात् ही कथाका प्रारंभ करना चाहिये।

प्रचलित है, अर्थात् वहांके जीव मनुष्यादि, अपनी सम्पूर्ण आयु विषय भोगो ही में विताया करते है। ये भोग भूमियां उत्तम मध्यम और जघन्य ३ प्रकारकी होती हैं और उनकी क्रमसे तीन, दो और एक पल्यकी वडी वड़ी आयु होती है। आहार बहुत कम होता है। वे सब समान (राजा प्रजाके भेद रहित) होते है। उनको सब प्रकारकी भोग सामग्री कल्पवृक्षों द्वारा प्राप्त होती है, इसलिये वे व्यापार धंधा आदिकी झंझटसे बचे रहते है। इस प्रकार वे (वहांके जीव) आयु पूर्ण कर मंद कषायोंके कारण देव गतिको प्राप्त होते हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके आर्य खंडोमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (कल्प काल) के छः काल (सुखमा सुखमा, सुखमा, सुखमा दुखमा, दुखमा सुखमा, दुखमा, और दुखमा दुखमा) की प्रवर्ति होती है सो इनमें भी प्रथमके तीन कालोमें तो भोग भूमिकी ही रीति प्रचलित रहती है, शेष तीन काल कर्मभूमिके होते है, इसलिये उन शेष कालोंमें चौथा (दुखमा सुखमा) काल है, जिसमें त्रेशठ शलाका आदि महा पुरुष उत्पन्न होते है। पांचवें और छठवें कालमें क्रमसे आयु, काय, बल, वीर्य घट जाता है और इसलिये इन कालोमें कोई भी जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। विदेह क्षेत्रोमें ऐसी कालचक्रकी फिरन नहीं होती है। वहा तो सदैव चौथा काल रहता है और कमसे कम २० तथा अधिकसे अधिक १६० श्री तीर्थंकर भगवान तथा अनेको सामान्यकेवली और मुनि श्रावक आदि विद्यमान रहते है और इसलिये सदैव ही मोक्ष मार्गका उपदेश व साधन रहनेसे जीव मोक्ष प्राप्त करते रहते है। जिन क्षेत्रोमें रहकर जीव आत्म-धर्मको प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, अथवा जिनमें मनुष्य असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्यादि द्वारा आजीविका करके जीवन निर्वाह करते हैं, वे कर्मभूमि कहलाते है।

इस मनुष्य क्षेत्रके मध्य जो जम्बूद्वीप है उसके बीचोंबीच सुदर्शन मेरु नामका स्तंभाकार एकलाख योजन ऊंचा पर्वत है। इस पर्वतपर सोलह अकृत्रिम जिन मंदिर हैं। यह वही पर्वत है, कि जिस पर भगवानका जन्माभिषेक इन्द्रादि देवो द्वारा किया जाता है। उसके सिवाय ६ पर्वत और भी दण्डाकार (भीतके समान) इस द्वीपमें है, जिनके कारण यह द्वीप सात क्षेत्रोमें बट गया है। ये पर्वत सुदर्शन मेरुके उत्तर और दक्षिण दिशामें आडे पूर्वसे पश्चिम तक समुद्रसे मिले हुए है। इन सात क्षेत्रोंमेंसे दक्षिणकी ओरसे सबके अंतके क्षेत्रको भरतक्षेत्र कहते है। इस भरतक्षेत्रमें भी बीचमें विजयार्द्ध पर्वत पड जानेसे यह दो भागोमें बट जाता है। और उत्तरकी ओर जो हिमवन पर्वतपर पद्मद्रह है, उसमें गंगा और सिंधु दो महा नदिया

निकलकर विजयार्द्ध पर्वतको भेदती हुई पूर्व और पाश्चिममें बहती हुई दक्षिण समुद्रमें मिलती हैं। इससे भरतक्षेत्रके छः खंड हो जाते हैं; इन छः खंडोंमें सबसे दक्षिणका बीच वाला खंड आर्य खंड कहाता है और शेष ५ म्लेच्छ खंड कहाते हैं। इसी आर्य खंडमें तीर्थंकरादि महापुरुष उत्पन्न होते हैं। यही आर्य खंड कहाता है।

इसी आर्य खंडमें मगध नामका एक प्रदेश है, जिसे आजकल विहारप्रांत कहते हैं।

इस मगधदेशमें राजगृही नामकी एक बहुत मनोहर नगरी है। और इस नगरीके समीप विपुलाचल, उदयाचल आदि पंच पहाडियां हैं तथा पहाडियोंके नीचे कितनेक उष्ण जलके कुंड बने हैं। इन पहाडियों व झरनोंके कारण नगरकी शोभा विशेष बढ गई है। यद्यपि काल दोषसे अब यह नगर उजाड हो रहा है परंतु उसके आसपासके चिह्न देखनेसे प्रकट होता है कि किसी समय यह नगर अवश्य ही बहुत उन्नत होगा।

आजसे २५२८ वर्ष पहिले अंतिम (चौबीसवें) तीर्थंकर श्री वर्द्धमान स्वामीके समयमें उस नगरमें महामंडलेश्वर महाराजा श्रेणिक राज्य करता था। यह राजा बडा प्रतापी न्यायी और प्रजापालक था। यह अपनी कुमार अवस्थामें पूर्वोपार्जित कर्मके उदयसे अपने पिता द्वारा देशसे निकाला गया था और भ्रमण करते हुए एक बौद्ध साधुके उपदेशसे बौद्धमतको स्वीकार कर चुका था। वह बहुत काल तक बौद्ध मतावलम्बी ही रहा। जब यह श्रेणिककुमार निज बाहु तथा बुद्धिबलसे विदेशोंमें भ्रमण करके बहुत विभूति व ऐश्वर्य सहित स्वदेशको लौटा, तो वहांके निवासियोंने इन्हें अपना राजा बनाना स्वीकार किया। उस समय इनके पिता उपश्रेणिक राजाका स्वर्गवास हो चुका था, और इनके एक भाई चिलातक नामके अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य करते थे। इनके राज्य कार्यमें अनभिज्ञ होने तथा प्रजापर अत्याचार करनेके कारण प्रजा इनसे अप्रसन्न हो गई थी, इसीसे सब प्रजाने मिलकर इन्हें राज्य च्युत कर दिया था। ठीक है, राजा प्रजापर अत्याचार नहीं कर सकता है, वह एक प्रकारसे प्रजाका रक्षक (नौकर) ही होता है, क्योंकि प्रजाके द्वारा ही राजाको द्रव्य मिलता है, अर्थात् उसकी जीविका प्रजाके आश्रित है, इसलिये वह प्रजापर नीतिपूर्वक शासन कर सकता है न कि स्वेच्छाचारी होकर अन्याय कर सक्ता है। उसका कर्त्तव्य है कि वह प्रजाकी भलाईके लिये सतत प्रयत्न करे तथा उसकी यथासाध्य रक्षा व उन्नतिका उपाय करता रहे, तभी वह राजा कहलानेके योग्य हो सकता है और प्रजा भी तभी उसकी

रत्नत्रय व्रत कथा।

दाता सम्यक् रत्नत्रय, गुरू शास्त्र जिनराय। कर प्रणाम वर्णं कथा, रत्नत्रय सुखदाय ॥ १ ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, इन विन मुक्ति न होय। तासो प्रथमहिं रत्नत्रय, कथा सुनो भविलोय ॥ २ ॥

जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्रमें एक कक्ष नामका देश और वीतशोकपुर नामका नगर है। वहां एक अत्यन्त पुण्यवान वैश्रवण नामका राजा रहता था, जो कि पुत्रवत् अपनी प्रजाका पालन करता था।

एक दिन वह (वैश्रवण) राजा वसन्तऋतुमें क्रीडाके निमित्त सानन्द उद्यानमें यत्र तत्र विचर रहा था कि इतने हीमें उसकी दृष्टि एक शिलापर विराजमान ध्यानस्थ श्री मुनिराज पर पडी। सो तुरंत ही हर्षित होकर वह राजा श्री मुनिराजके समीप आया और विनययुक्त नमस्कार करके बैठ गया। मुनिराज जब ध्यान कर चुके, तो उन्होंने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और इसप्रकार धर्मोपदेश देने लगे—

यह जीव अनादिकालसे मोह कर्मवश मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करता हुआ पुनः पुनः कर्म बंध करता और संसारमें जन्म मरणादि अनेक प्रकार दुखोंको भोगता है। इसलिये जब तक इस रत्नत्रय (जो कि आत्माका निज स्वभाव है) की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक यह (जीव) दुःखोंसे छूटकर निराकुलता स्वरूप सच्चे सुख व शांतिको प्राप्त नहीं हो सकता जो कि वास्तवमें इस जीवका हितकारी है। इसी लिये भगवानने "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्रको मोक्षमार्ग कहा है और सच्चा सुख मोक्ष अवस्था हीमें मिलता है, इसलिये मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करना मुमुक्षु जीवोंका परम कर्त्तव्य है।

(१) पुद्गलादि परद्रव्योंसे भिन्न, निज स्वरूपका श्रद्धान (स्वानुभव) तथा उसके कारण स्वरूप सप्त तत्वों और सत्यार्थ देव गुरु व शास्त्रका श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन अष्ट अंग सहित और २५ मल दोष रहित धारण करना चाहिये। अर्थात् जिन भगवानके कहे हुए वचनोंमें शंका नहीं करना, संसारके विषयोंकी अभिलाषा न करना, मुनि आदि साधर्मियोंके मलीन शरीरको देखकर ग्लानि न करना, देव धर्म गुरुकी व सत्यार्थ तत्वोंकी यथार्थ पहिचान

करना। अर्थात् कुगुरु (रागी द्वेषी भेषी परिग्रही साधु व गृहस्थ) कुदेव (रागी द्वेषी भयकर देव) कुधर्म (हिंसा पोषक क्रियायें) की प्रशंसा भी न करना, धर्मपर लगते हुए मिथ्या आक्षेपोंको दूर करना और अपनी बड़ाई परनिंदा का त्याग करना। सम्यक् श्रद्धान और चारित्रसे डिगते हुए प्राणियोंको धर्मोपदेश तथा द्रव्यादि देकर किसी प्रकार स्थिर करना। धर्म और धर्मात्माओंमें निष्कपट भावसे प्रेम करना और सर्वोपरि सर्व हितकारी श्री दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा बताये हुये श्री पवित्र जिनधर्मका यथार्थ प्रभाव सर्वोपरि प्रकट कर देना येही अष्ट अंग है। इनसे विपरीत शंकादि आठ दोष, जाति, कुल, बैल, ऐश्वर्य, धन, रूप, विद्या और तप इन आठके आश्रित हो गर्व करना सो आठ मद; कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु सेवक, कुदेव आराधक तथा कुधर्म धारक, ये छः अनायतन और लोकमूढ़ता (देखादेखी बिना हिता-हितका विचार किये प्रवर्तना) देवमूढ़ता (लौकिक चमत्कारोंके कारण लोभमें फंसकर रागी द्वेषी देवोंको पूजना) और पाखंडि मूढ़ता (कुलिंगी ठग आडंबरधारी गुरुओंकी सेवा करना) इस प्रकार ये पच्चीस सम्यक्त्वके दूषण हैं। इनसे सम्यक्त्वका एकदेश घात होता है इसलिये इन्हें त्याग देना चाहिये।

(२) पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय आदि दोषोंसे रहित जानना सो सम्यग्ज्ञान है।

(३) आत्माकी निज परणति (जो वीतराग रूप है) में ही रमण करना, अर्थात् रागद्वेषादि विभाव भावों तथा क्रोधादि कषायोंसे आत्माको अलग करने व बचानेके लिये व्रत, संयम, तपादिक करना सो सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार उस रत्नत्रय रूप मोक्षमार्गको समझकर और उसे स्वशक्ति अनुसार धारण करके, जो कोई भव्य जीव बाह्य तपाचरण धारण करता है वही सच्चे (मोक्षके) सुखको प्राप्त होता है।

इसप्रकार रत्नत्रयका स्वरूप कह कर अब बाह्य व्रत पालनेकी विधि कहते हैं।

भादों, माघ, और चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें; तेरस, चौदस, और पूनम इस प्रकार तीन दिन यह व्रत किया जाता है और १२को व्रतकी धारणा तथा प्रतिपदाको पारणा किया जाता है, अर्थात् १२ को श्री जिन भगवानकी पूजनाभिषेक करके एकासन (एकभुक्त) करे और फिर मध्यान्हकालकी सामायिक करके उसी समयसे चारों प्रकारके (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य

नाथ ! यह तो हमने सुना, अब कृपा करके हमको ऐसा मार्ग बताइये कि जिससे इस पराधीन स्त्री पर्याय तथा जन्म मरणादिके दुःखोंसे छुटकारा मिले।

तब श्री गुरु बोले—बालिकाओ ! सुनो।

यह जीव अनादिकालसे मोह भावको प्राप्त हुआ, विपरीत आचरण करके ज्ञानावरणादि अष्टकर्मोंको बांधता है और फिर पराधीन हुवा संसारमें नाना प्रकारके दुःख भोगता है। सुख यथार्थमें कहीं बाहरसे नहीं आता है न कोई भिन्न पदार्थ ही है, किन्तु वह (सुख) अपने निकट ही आत्मामें, अपने ही आत्माका स्वभाव है, सो जब तीव्र मोहका उदय होता उस समय यह जीव अपने उत्तमक्षमादि गुणोंका (जो यथार्थमें सुख शांति स्वरूप ही हैं) भूल कर इनसे विपरीत क्रोधाधि भावोंको प्राप्त होता है और इस प्रकार स्वपरकी हिंसा करता है। सो कदाचित यह अपने स्वरूपका विचार करके अपने चित्तको उत्तमक्षमादि गुणोसे रंजित करे, तो निःसदेह इस भव और परभवमें सुख भोग कर परम पद (मोक्ष) को भी प्राप्त कर सकता है। स्त्री पर्यायसे छूटना तो कठिन ही क्या है ? इसलिये पुत्रियो ! तुम मन, वचन, कायसे इस उत्तम दशलक्षण रूप धर्मको धारण करके यथाशक्ति व्रत पालो, तो निःसन्देह मन वांछित (उत्तम) फल पाओगी।

भगवान्ने 'उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणिधर्मः' अर्थात् उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, और उत्तम ब्रह्मचर्य्य इस प्रकार ये धर्मके दशलक्षण बताये हैं। ये वास्तवमें आत्माके ही निजभाव हैं, जो कि क्रोधादि कषायोंसे ढंक रहे हैं।

उत्तम क्षमा, क्रोधके उपशम, क्षयोपशम वा क्षय होनेसे प्रगट होती है इसी प्रकार उत्तम मार्दव, मानके उपशम क्षयोपशम व क्षयसे होता है। उत्तम आर्जव, मायाके नाश होनेसे होता है। सत्य मिथ्यात्व (मोह) के नाशसे होता है। शौच, लोभके नाशसे होता है। संयम, विषयानुराग कम वा नाश होनेसे होता है। तप, इच्छाओंको रोकने (मन वश करने) से होता है। त्याग, ममत्व (राग) भाव कम वा नाश करनेसे होता है। आकिंचन्य, निष्पृहतासे उत्पन्न होता है और ब्रह्मचर्य्य, काम विकार तथा उसके कारणोंको छोड़नेसे उत्पन्न होता है। इस प्रकार ये दशों धर्म अपने प्रतिघातक दोषोंके क्षय होनेसे प्रगट हो जाते हैं।

(१) क्षमावान् प्राणी कदापि किसी जीवसे वैर विरोध नहीं करता है और न किसीको बुरा भला कहता है। किन्तु दूसरोंके द्वारा अपने ऊपर लगाये हुये दोषोंको सुनकर अथवा आये हुये उपद्रवों पर भी विचलित चित्त नहीं होता है और उन दुःख देनेवाले जीवोंपर उल्टा करुणा भाव करके क्षमा कर देता है तथा अपने द्वारा किये हुये अपराधोंकी क्षमा मांग लेता है। इस प्रकार यह क्षमावान पुरुष सदा निर्वैर हुआ, अपना जीवन सुखशांतिमय बनाता है।

(२) इसी प्रकार मार्दव धर्मधारी नरके क्षमा तो होती है किन्तु जाति, कुल, ऐश्वर्य, विद्या, तप और रूपादि समस्त प्रकारके मदोंके नाश होनेसे विनयभाव प्रकट होता है, अर्थात्–वह प्राणी अपनेसे बड़ोंमें भक्ति व विनयभाव रखता है और छोटोंमें करुणा व नम्रभाव रखता है, सबसे यथायोग्य मिष्टवचन बोलता है और कभी भी किसीमें कठिन शब्दोंका प्रयोग नहीं करता है। इसीसे यह मिष्ट भाषी विनयी पुरुष सर्वप्रिय होता है। और किसीसे द्वेष न होनेसे सानन्द जीवनयात्रा करता है।

(३) आर्जव धर्मधारी पुरुष, क्षमा और मार्दव धर्म पूर्वक ही आर्जवधर्म (सरलता) को धारण करता है। इसके जो कुछ बात मनमें होती है, सो ही वचनसे कहता और कही बातको पूरी करता है। इसप्रकार यह सरल परिणामी पुरुष निष्कपट होनेके कारण निश्चिंत तथा सुखी होता है।

(४) सत्यवान पुरुष सदैव जो बात जैसी है; अथवा वह जैसी उसे जानता व समझता है, वैसी ही कहता है। अन्यथा नहीं कहता, कहे हुये वचनोंको नहीं बदलता और न कभी किसीको हानि व दुःख पहुंचानेवाले वचन बोलता है। वह तो सदैव अपने वचनो पर दृढ रहता है। इसके उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव ये तीनों धर्म अवश्य ही होते हैं। यह पुरुष अन्यथा प्रलापी न होनेसे सबका विश्वासपात्र होता है और संसारमें सन्मान व सुखको प्राप्त होता है।

(५) शौचवान नर उपर्युक्त चारो धर्मोको पालता हुआ अपने आत्माको लोभसे बचाता है और जो पदार्थ न्याय-पूर्वक उद्योग करनेसे उसके क्षयोपशमके अनुसार उसे प्राप्त होते हैं वह उसीमें संतोष करता है और कभी स्वप्नमें भी परधन हरण करनेके भाव इसके नहीं होते हैं। यदि अशुभकर्मके उदयसे इसे किसी प्रकारका कभी घाटा हो जाय अथवा और किसी प्रकार इसका द्रव्य चला जाय, तो भी यह दुखी नहीं होता और अपने कर्मोंका विपाक समझकर धैर्य धारण

करता है परंतु अपने घाटेकी पूर्तिके लिये कभी किसी दूसरेको हानि पहुंचानेकी चेष्टा नहीं करता है। इसको तृष्णा न होनेके कारण सदा आनंद रहता है और इसीलिये कभी किसीसे ठगाया भी नहीं जाता है।

(६) संयमी पुरुष भी उक्त पांचों व्रतोंको पालता हुआ अपनी इंद्रियोंको उनके विषयोंसे रोकता है। ऐसी अवस्थामें इसे कोई पदार्थ इष्ट व अनिष्ट प्रतीत नहीं होते हैं, क्योंकि विषयानुरागताके ही कारण अपने ग्रहण योग्य पदार्थ इष्ट और आरोचक व ग्रहण न करने योग्य अनिष्ट माने जाते हैं, सो इष्टानिष्ट कल्पना न रहनेके कारण उनमें हेयोपादेय-कल्पना भी नहीं रहती है। तब समभाव होता है इसीसे यह समरसी आंनदको प्राप्त करता है।

(७) तपस्वी पुरुष इंद्रियोंको वश करता हुवा भी मनको पूर्ण रीतिसे वश करता है और उसे यत्र तत्र दौड़नेसे रोकता है। किसी प्रकारकी इच्छा नही उत्पन्न होने देता है। जब इच्छा ही नहीं रहती तो आकुलता किस बातकी? यह अपने ऊपर आने वाले सब प्रकारके उपसर्गोंको धीरतापूर्वक सहन करनेमें उद्यमी व समर्थ होता है। वास्तवमें ऐसा कोई भी सुर नर वा पशु संसारमें नहीं जन्मा है, जो इस परम तपस्वीको उसके ध्यानसे किंचिन्मात्र भी डिगा सके। इसलिये ही इस महापुरुषके एकाग्रचिंतानिरोध रूप धर्म व शुक्ल ध्यान होता है, जिससे यह अनादिसे लगे हुवे कठिन कर्मोंको अल्प समयमें नाश करके सच्चे सुखोंका अनुभव करता है।

(८) त्यागी पुरुषके उक्त सातों व्रत तो होते ही हैं किन्तु इस पुरुषका आत्मा बहुत उदार हो जाता है। यह अपने आत्मासे रागद्वेषादि भावोंको दूर करने तथा स्व पर उपकारके निमित्त आहारादि चारों दान देता है और दान देकर अपने आपको धन्य व स्व सम्पत्तिको सफल हुई समझता है। यह कदापि स्वप्नमें भी अपनी ख्याति व यश नहीं चाहता और न दान देकर उसे स्मरण रखता अथवा कभी किसी पर प्रगट ही करता है। वास्तवमें दान देकर भूल जाना ही दानीका स्वभाव होता है इससे यह पुरुष सदा प्रसन्न चित्त रहता है और मृत्युका समय उपस्थित होनेपर भी निराकुल रहता है। इसका चित्त धनादिकमें फसकर आर्त रौद्र रूप कभी नहीं होता और उसका आत्मा सद्गतिको प्राप्त होता है।

(९) आकिंचन्य—बाह्य आभ्यतर समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे ममत्व भावोंको छोड़ देने वाला पुरुष सदैव निर्भय रहता है। उसे न कुछ सम्हालना और न रक्षा करना पड़ती है। यहांतक कि वह अपने शरीर तकसे निस्पृह रहता है, तब

ऐसे महापुरुषको कौन पदार्थ आकुलित कर सकता है, क्योंकि वह अपने आत्माके सिवाय समस्त पदार्थोंको और शुद्ध चैतन्य ऐसे भावोंके सिवाय समस्त पर भावों या विभावोंको हेय अर्थात् त्याज्य समझता है। इसीसे उसके कुछ भी ममत्व शेष नहीं रह जाता और समय समय असंख्यात व अनन्तगुणी कर्मोंकी निर्जरा होती रहती है। इसीसे यह सुखी रहता है।

(१०) ब्रह्मचर्यधारी महा बलवान योद्धा सदैव उक्त नव व्रतोंको धारण करता हुवा, निरंतर अपने आत्मामें ही रमण करता है। वह बाह्य स्त्री आदिसे विरक्त रहता है, उसकी दृष्टिमें सब जीव संसारके समान प्रतीत होते हैं और स्त्री पुरुष व नपुंसकादिको वेद कर्मकी उपाधि जानता है। वह सोचता है कि यह देह हाड, मांस, मल, मूत्र, रुधिर, पीव आदि महा अपवित्र व दुर्गंधित पदार्थोंका थैला है। बाहर सब ओरसे चर्मकी बारीक चादरमें लिपटा हुवा होनेके कारण ही यह रागी जीवोंको सुहावना सा लगता है। यदि यह चामकी चादर हटा दी जाय अथवा वृद्धावस्था आ जाय तो फिर इसकी ओर देखनेको भी जी न चाहे। इत्यादि, ऐसे घृणित शरीरमें क्रीडा करना क्या है ? मानो विष्टा (मल) के कीट (कीडा) वत् उसमें अपने आपको फसाकर चतुर्गतिके दुखोंमें डालना है। इस प्रकार यह सुभट कामके दुर्जय किलेको तोडकर अपने अनन्त सुखमई आत्मामें ही विहार करता है। ऐसे महा पुरुषका आदर सब जगह होता है और तब कोई भी कार्य संसारमें ऐसा नहीं रह जाता है, कि जिसे वह अखंड ब्रह्मचारी न कर सके। तात्पर्य-वह सब कुछ करनेको समर्थ होता है।

इस प्रकार इन दश धर्मोंका संक्षिप्त स्वरूप कहा सो तुमको निरंतर इन धर्मोंको अपनी शक्ति अनुसार धारण करना चाहिये। अब इस दशलक्षण व्रतकी विधि कहते हैं।

भादों, माघ, और चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें पंचमीसे चतुर्दशी तक दश दिन पर्यन्त यह व्रत किया जाता है। दशों दिन त्रिकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, वंदना, पूजन, अभिषेक, स्तवन, स्वाध्याय तथा धर्मचर्चा आदि करे और क्रमसे पंचमीको "ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमक्षमा धर्मांगाय नमः" इस मंत्रका १०८ वार, एक एक समय, इस प्रकार दिनमें ३२४ वार तीन काल सामायिकके समय जाप्य करे और इस उत्तम क्षमा गुणकी प्राप्तिके लिये भावना भावे तथा उसके स्वरूपका वारवार चिंतवन करे। इसी प्रकार छठमीको "ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तममार्दव धर्मांगाय नमः" का जाप करे भावना भावे, फिर सप्तमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम आर्जव धर्मांगाय नमः,

अष्टमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसत्य धर्माङ्गाय नमः, नवमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तम शौच धर्माङ्गाय नमः
दशमीको " " " संयम " एकादशीको " " " तप "
द्वादशीको " " " त्याग " त्रयोदशीको " " " आकिंचन्य "
चतुर्दशीको " " " ब्रह्मचर्य " इत्यादि मंत्रोंका जाप करके भावना भावे। समस्त दिन स्वाध्याय पूजादि धर्म कार्योंमें वितावे, रात्रिको जागरण भजन करे, सब प्रकारकी रागद्वेष व क्रोधादि कषाय तथा इन्द्रिय विषयोंको बढानेवाली विकथाओंका तथा व्यापारादि समस्त प्रकारके आरंभोंका सर्वथा त्याग करे। दशो दिन यथाशक्ति प्रोषध (उपवास) वेला, तेला आदि करे अथवा ऐसी शक्ति न हो तो एकाशना, ऊनोदर तथा रस त्याग करके करे, परंतु कामोत्तेजक, सचिक्कण, मिष्ट, गरिष्ट (भारी) और स्वादिष्ट भोजनोंका त्याग करे तथा अपना शरीर स्वच्छ खादीके सादे कपडोंसे ही ढंके। बढियां बढ़ियां वस्त्रालंकार न धारण करे और रेशम ऊन तथा फेन्सी परदेशी व मिलोंके बने वस्त्र तो छुवे भी नहीं, क्योंकि ये अनन्त जीवोंके घातसे बनते हैं और कामादिक विकारोंको बढ़ानेवाले होते हैं। इसप्रकार यह व्रत दश वर्ष तक पालन करके पश्चात् उत्साहसहित उद्यापन करे, अर्थात्–क्षत्र चमरादि मंगलद्रव्य, जपमाला, कलश, शास्त्रादि धर्मोपकरण प्रत्येक दश दश श्री मंदिरजीमें पधराना चाहिये तथा पूजा विधानादि महोत्सव करना चाहिये। दुःखित भुखितोंको भोजनादि दान देना चाहिये, वांचनालय, विद्यालय, छात्रालय, औषधालय, अनाथालय, पुस्तकालय, तथा दीन प्राणी रक्षक संस्थाएं आदि स्थापित करना चाहिये। यदि इस प्रकार द्रव्य खर्च करनेमें असमर्थ हो तो, शक्ति प्रमाण प्रभावनागको बढानेवाला उत्सव करे अथवा सर्वथा असमर्थ हो तो द्विगुणित वर्षों प्रमाण (२० वर्ष) व्रत करे। इस व्रतका फल स्वर्ग तथा मोक्ष सुखकी प्राप्ति होना है।

यह उपदेश व व्रतकी विधि सुन उन चारों कन्याओंने मुनिराजकी साक्षी पूर्वक इस व्रतको स्वीकार किया और निज निज घरोंको गई। पश्चात् दश वर्ष तक उन्होंने यथाविधि व्रत पालकर उद्यापन किया, सो उत्तम क्षमादि धर्मोंका अभ्यास हो जानेसे उन चारों कन्याओंका जीवन सुख और शांतिमय हो गया। वे चारों कन्यायें इस प्रकार सर्व स्त्री-समाजमें मान्य हो गई। पश्चात् वे अपनी आयु पूर्ण कर अंत समय समाधिमरण करके महाशुक्र नामक दशवें स्वर्गमें

महर्द्धिक देव हुए। वहा पर अनेक प्रकार सुख भोगते और अकृत्रिम
अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु, और पद्मसारथी नामके
जिन चैत्यालयोंकी भक्ति वंदना करते हुए अपनी आयु पूर्ण कर वहांसे चये सो जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मालवा प्रांतके
उज्जैन नगरमें मूलभद्र राजाके घर लक्ष्मीमती नामकी रानीके गर्भसे पूर्णकुमार, देवकुमार, गुणचन्द्र, और पद्मकुमार नामके
रूपवान व गुणवान पुत्र हुए और भलेप्रकार बाल्यकाल व्यतीत करके कुमारकालमें सब प्रकारकी विद्याओंमें निपुण हुए।

पश्चात् इन चारोंका व्याह, नंदननगरके राजा इण तथा उनकी पत्नी तिलकसुंदरीके गर्भमें उत्पन्न कलावती,
ब्राह्मी, इदुगानी, और कक्रू नामकी चार अत्यन्त रूपवान तथा गुणवान कन्याओंके साथ हुआ, और ये दम्पति प्रेमपूर्वक
कालक्षेप करने लगे।

एक दिन राजा मूलभद्रने आकाशमें बादलोंको बिखरे हुए देखकर संसारके विनाशीक स्वरूपका चिंतवन किया
और द्वादशानुप्रेक्षा भाई। पश्चात् ज्येष्ठ पुत्रको राज्य भार सौंप कर आप परम दिगम्बर मुनि होगये।

इन चारों पुत्रोंने यथायोग्य प्रजाका पालन व मनुष्योचित भोग भोगकर कोई एक कारण पाकर जिनेश्वरी दिक्षा
ली, और महान तपश्चरण करके केवलज्ञानको प्राप्त हो, अनेक देशोंमें विहार करके धर्मोपदेश दिया।

फिर शेष अघातिया कर्मोंको भी नाशकर आयुके अंतमें योग निरोध करके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होगये।

इस प्रकार उक्त चारों कन्याओंने विधि पूर्वक इस व्रतको धारण करके स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग तथा मनुष्य
गतिके सुखों भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया। इसी प्रकार जो और भव्यजीव मन, वचन, कायसे इस व्रतको पालन करेंगे
वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त होंगे।

मृगांकलेखादि कन्याए, दशलक्षण व्रतधार। 'दीप' लहो निर्वाण पद, वन्दू बारबार ॥ १ ॥

षोडशकारण व्रत कथा।

दो०। कारण भावना, जो भवि चित्तधार। कर तिन पदको वंदना, कहूं कथा सुखकार ॥ १ ॥

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रके मगध (विहार) प्रांतमें राजगृही नगर है। वहांका राजा हेमप्रभु और रानी विजयावती थी। उस राजाके यहां महाशर्मा नामका नौकर था और उसकी स्त्रीका नाम प्रियंवदा था। इस प्रियंवदाके गर्भसे कालभैरवी नामकी एक अत्यन्त कुरूपा कन्या उत्पन्न हुई कि जिसे देखकर मातापितादि सभी स्वजनों तकको घृणा होती थी।

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्गसे गमन करते हुए इस नगरमें आये, सो उस महाशर्माने अत्यन्त भक्ति सहित श्री मुनिको पड़गाहकर विधिपूर्वक आहार दिया और उनसे धर्मोपदेश सुना। पश्चात् जुगल कर जोड़कर विनययुक्त हो पूछा—हे नाथ! यह मेरी कालभैरवी नामकी कन्या किस पाप कर्मके उदयसे ऐसी कुरूपा और कुलक्षणी उत्पन्न हुई है, सो कृपाकर कहिये? तब अवधिज्ञानके धारी श्री मुनिराज कहने लगे, वत्स! सुनो—

उज्जैन नगरीमें एक महीपाल नामका राजा और उसकी वेगावती नामकी रानी थी। इस रानीसे विशालाक्षी नामकी एक अत्यन्त सुन्दर रूपवान कन्या थी जो कि बहुत रूपवान होनेके कारण बहुत अभिमानिनी थी और इसी रूपके मदसे उसने एक सद्गुण न सीखा। यथार्थ है अहंकारी (मानी) नरोंको विद्या नहीं आती है।

एक दिन वह कन्या अपनी चित्रसारीमें बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देख रही थी कि, इतनेमें ज्ञानसूर्य नामके महातपस्वी श्री मुनिराज उसके घरसे आहार लेकर बाहर निकले। सो इस अज्ञान-कन्याने रूपके मदसे मुनिको देख कर खिड़कीसे मुनिके ऊपर थूक दिया, और बहुत हर्षित हुई।

परंतु पृथ्वीके समान क्षमावान श्री मुनिराज तो अपनी नीची दृष्टि किये हुए ही चले गये, यह देखकर राज-पुरोहित इस कन्याका उन्मत्तपना देखकर उसपर बहुत क्रोधित हुआ, और तुरन्त ही प्रासुक जलसे श्री मुनिराजका शरीर प्रक्षालन करके बहुत भक्तिसे वैय्यावृत्य कर स्तुति की। यह देखकर वह कन्या बहुत लज्जित हुई, और अपने किये हुए

नीच कृत्य पर पश्चाताप करके श्री मुनिके पास गई और नमस्कार करके अपने अपराधकी क्षमा मागी। श्री मुनिराजने उसको धर्मलाभ कह कर उपदेश दिया, पश्चात् वह कन्या यहांसे मरकर तेरे घर यह कालभैरवी नामकी कन्या हुई है। इसने जो पूर्वजन्ममें मुनिकी निंदा व उपसर्ग करके जो घोर पाप किया है उसीके फलसे यह ऐसी कुरूपा हुई है। क्योंकि पूर्व सचित कर्मोंका फल भोगे विना छुटकारा नही होता है। इसलिये अब इसे समभावोंसे भोगना ही कर्तव्य है और आगेको ऐसे कर्म न बंधे ऐसा समीचीन उपाय करना योग्य है। अब पुनः वह महाशर्मा बोला, हे प्रभो! आपही कृपा कर कोई ऐसा उपाय बताइये, कि जिससे यह कन्या अब इस दुःखसे छूटकर सम्यक् सुखोंको प्राप्त होवे। तब श्री मुनिराज बोले, वत्स! सुनोः—

संसारमें मनुष्योंके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है सो भला यह कितनासा दुःख है? जिनधर्मके सेवनसे तो अनादिकालसे लगे हुए जन्म मरणादि दुःख भी छूट कर सच्चे मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है और दुःखोंके छूटनेकी तो बात ही क्या है? वे तो सहज हीमें छूट जाते हैं। इसलिये यदि यह कन्या षोडशकारण भावना भावे, और व्रत पाले, तो अल्पकालमें ही स्त्रीलिंग छेद कर ही मोक्ष सुखको पावेगी। तब वह महाशर्मा बोला, हे स्वामी! इस व्रतकी कौन कौन भावनायें हैं और विधि क्या है? सो कृपा कर कहिये। तब मुनिराजने उन जिज्ञासुओंको निम्न प्रकार षोडशकारण व्रतका स्वरूप और विधि बताई। वे कहने लगे किः—

(१) संसारमें जीवका शत्रु मिथ्यात्व और मित्र सम्यक्त्व है। इसलिये मनुष्यका कर्तव्य है कि सबसे प्रथम मिथ्यात्व (अतत्व श्रद्धान या विपरीत श्रद्धान) को वमन (त्याग) करके सम्यक्त्वरूपी अमृतका पान करें। सत्यार्थ (जिन) देव, सच्चे (निर्ग्रन्थ) गुरू और सच्चे (जिन भाषित) धर्मपर श्रद्धा (विश्वास) लावें। पश्चात् सप्त तत्वों तथा पुण्य पापका स्वरूप जानकर इनकी श्रद्धा करके अपने आत्माको पर पदार्थोंसे भिन्न अनुभव करें और इनके सिवाय अन्य मिथ्या देव गुरू व धर्मको दूर हीसे इस प्रकार छोड दें जैसे तोता अवसर पाकर पिंजरेसे निकल भागता है। ऐसे सम्यक्त्वी पुरुषोंके प्रशम (मंदकषाय स्वरूप समभाव अर्थात् सुख व दुःखमें समुद्र सरीखा गंभीर रहना, घबराना नहीं) संवेग (धर्मानुराग–सांसारिक विषयोंसे विरक्त हो, धर्म और धर्मायतनोंमें प्रेम बढाना), अनुकम्पा (करूणा–दुःखी जीवोंपर

दया भाव करके उनकी यथाशक्ति सहायता करना) और आस्तिक्य (श्रद्धा-कैसा भी अवसर क्यों न आवे, तो भी अपने निर्णय किये हुए सन्मार्गमें दृढ रहना) ये चार गुण प्रगट हो जाते हैं। उन्हें किसी प्रकारका भय व चिंता व्याकुल नहीं कर सकती है। वे धीर वीर सदा प्रसन्नचित्त ही रहते हैं, कभी किसी चीजकी उन्हें प्रबल इच्छा नहीं होती, चाहे वे चारित्रमोह कर्मके उदयमें व्रत न भी ग्रहण कर सकें तो भी व्रत और व्रती सम्बन्धी जनोंमें उनकी श्रद्धा भक्ति व सहानुभूति अवश्य रहती है जो कि मोक्ष मार्गकी प्रथम सोपान (सीढी) है। इसलिये इसे भी २५ मल-दोषोंसे रहित और अष्ट अंग सहित धारण करे, इसके बिना ज्ञान और चारित्र सब निष्फल (मिथ्या) हैं। यही दर्शन विशुद्धि नामकी प्रथम भावना है।

(२) जीव (मनुष्य) जो सम्यग्दर्शनकी दृष्टिसे उतर जाता है, उसका प्रधान कारण केवल अहंकार (मान) है। सो कदाचित वह मानी अपनी समझमें भले ही अपने आपको बड़ा माने परन्तु क्या कौआ मंदिरके शिखर पर बैठ जानेसे गरुडपक्षी होसकता है? कभी नहीं है। किन्तु सब ही प्राणी उससे घृणा ही करते हैं। और कदाचित उसके पूर्व पुण्योदयसे उसे कोई कुछ न भी कह सके, तो भी वह किसीके मनको वश नहीं कर सकता है? सत्य है। जो ऊपरको देखकर चलता है, वह अवश्य ही नीचे गिरता है। ऐसे मानी पुरुषको कभी कोई विद्या सिद्ध नहीं होती है क्योंकि विद्या विनयसे आती है। मानी पुरुष चित्तमें सदा खेदित रहता है, क्योंकि वह सदा सबसे सन्मान चाहता है, और ऐसा होना असंभव है इसलिये निरंतर सबको अपनेसे बड़ोंसे सदा विनय, समान (बराबरीवालों) पुरुषोंसे प्रेम, और छोटोंसे करुणा भावसे प्रवर्तना चाहिये। सदैव अपने दोषोंको स्वीकार करनेके लिये सावधानता पूर्वक तत्पर रहना चाहिये। और दोष बताने वाले सज्जनका बहुत उपकार मानना चाहिये, क्योंकि जो मानी पुरुष अपने दोषोंको स्वीकार नहीं करता, उसके दोष निरंतर बढते ही जाते हैं और इसीलिये वह कभी उनसे मुक्त नहीं हो सकता। इसलिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार इन पांच प्रकारकी विनयोंका वास्तविक स्वरूप विचार कर विनयपूर्वक प्रवर्तन करना, सो विनय सम्पन्नता नामकी भावना है।

(३) विना मर्यादा अर्थात प्रतिज्ञाके मन वश नहीं होता, जैसा कि विना लगाम (बाग-रास) के घोडा या विना

अंकुशके हाथी, इसलिये आवश्यक है कि मन व इंद्रियोंको वश करनेके लिये कुछ प्रतिज्ञारूपी अंकुश पासमें रखना चाहिये। यथा अहिंसा (किसी भी जीवको अथवा अपने भी द्रव्य तथा भाव प्राणोंका घात न करना अर्थात् उन्हें न सताना न मारना), सत्य (यथार्थ वचन बोलना, जो किसीको भी पीडाजनक न हों), अचौर्य (विना दिये हुए परवस्तुका ग्रहण न करना), ब्रह्मचर्य (स्त्रीमात्रका अथवा स्वदार विना अन्य स्त्रियोंके साथ विषय (मैथुन सेवन) का त्याग) और स्वपर आत्माओंको विषय कषाय उत्पन्न करानेवाले बाह्य अभ्यतर परिग्रहोंका त्याग या प्रमाण (सम्पूर्ण परिग्रहोंका त्याग या अपनी योग्यता या शक्ति अनुसार आवश्यक वस्तुओंका प्रमाण करके अन्य समस्त पदार्थोंसे ममत्वभाव त्याग करना, इसे लोभको रोकना भी कहते हैं) इस प्रकार ये पाच व्रत और इनकी रक्षार्थ सप्तशीलो (३ गुणव्रतों और ४ शिक्षाव्रतों) का भी पालन करे तथा उक्त शील और व्रतोंके अतीचारों (दोषों) को भी बचावे। इन व्रतोंके निर्दोष पालन करनेसे न तो राज्यदड कभी होता है और न पचदण्ड ही होता है और ऐसा व्रती पुरुष अपने सदाचारसे सबका आदर्श बन जाता है। उसके विरुद्ध कदाचारी जनोंको इस भवमें और परभवमें भी अनेक प्रकार दण्ड व दुख सहने पडते हैं, ऐसा विचार करके इन व्रतोंमें निरतर दृढ होना चाहिए। यह शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

(४) मिथ्यात्वके उदयसे हिताहितका स्वरूप विना जाने ये ससारी जीव सदैव अपने लिये सुख प्राप्तिकी इच्छासे विपरीत ही मार्ग ग्रहण कर लेता है, जिससे सुख मिलना तो दूर रहो किंतु उल्टा दुःखका सामना करना पडता है। इसलिये निरतर ज्ञान सम्पादन करना परमावश्यक है; क्योंकि जहां चर्म चक्षु काम नहीं दे सकते हैं वहां ज्ञानचक्षु ही काम देते हैं। ज्ञानी पुरुष नेत्र हीन होनेपर भी अज्ञानी आखवालेसे अच्छा है। अज्ञानी न तो लौकिक कार्यों हीमें सफल मनोरथ होते हैं, और न पारलौकिक ही कुछ साधन कर सकते हैं। वे ठौर ठौर ठगाये जाते हैं, और अपमानित होते हैं। इसलिये ज्ञान उपार्जन करना आवश्यक है। ऐसा विचार करके निरतर विद्याभ्यास करना, व कराना सो अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग नामकी भावना है।

(५) इन संसारी जीवोंमेंसे प्रत्येक जीवके विषयानुरागता इतनी बढी हुई है कि कदाचित् उसको तीन लोककी समस्त सम्पत्ति भोगनेको मिल जाय तो भी उसकी इच्छाके असख्यातवे भागकी पूर्ति न हो, सो जीव तो संसारमें अनन्तानन्त

हैं, और लोकके पदार्थ जितने है उतने ही हैं, सो जब सभी जीवोंकी अभिलाषा ऐसी ही बढ़ी हुई है, तब यह लोककी सामग्री किस किसको कितने कितने अंशोंमें पूर्ति कर सकती है? अर्थात् किसीको नहीं। ऐसा विचारकर उत्तम पुरुष अपनी इंद्रियोंको विषयोंसे रोककर मनको धर्मध्यानमें लगा देते है। इसीको संवेग भावना कहते है।

(६) जबतक मनुष्य किसी भी पदार्थमें ममत्व, अर्थात् यह वस्तु मेरी है ऐसा भाव रखता है, तब तक वह कभी सुखी नहीं हो सकता है; क्योंकि पदार्थोंका स्वभाव नाशवान है, जो उत्पन्न हुए सो नियमसे नाश होंगे, और जो मिले हैं, सो बिछुड़ेंगे इसलिये जो कोई इन पदार्थोंको (जो उसे पूर्व पुण्योदयसे प्राप्त हुए हैं) अपने आप ही उनको छोड़ जानेसे पहिले ही छोड देवे, ताकि वे (पदार्थ) उसे न छोड़ने पावें, तो निःसंदेह दुःख आनेका अवसर ही न आवेगा। ऐसा विचार करके जो आहार, औषध, शास्त्र (विद्या) और अभय इन चार प्रकारके दानोंको मुनि, आर्जिका, श्रावक श्राविकाओं (चार संघों) में भक्तिसे तथा दीन दुखी नर पशुओंको करुणा भावोंसे देता है तथा अन्य यथावश्यक कार्यों (धर्म प्रभावना व परोपकार) में द्रव्य खर्च करता है उसे ही दान या शक्तितस्त्याग नामकी भावना कहते है।

(७) यह जीव स्व स्वरूपको भूला हुवा इस घृणित देहमें ममत्व करके इसके पोषणार्थ नाना प्रकारके पाप करता है, तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता, दिनोदिन सेवा और सम्हाल करते २ क्षीण होता जाता है और एक दिन आयुकी स्थिति पूर्ण होते ही छोड़ देता है, सो ऐसे नाशवत और घृणित शरीरमें ममत्व (राग) न करके वास्तविक सच्चे सुखकी प्राप्तिके अर्थ इसको लगाना (उत्सर्ग करना) चाहिये ताकि इसका जो जीवके साथ अनन्तानन्त वार संयोग तथा वियोग हुआ करता है, सो फिर ऐसा वियोग हो, कि फिर कभी भी संयोग न हो सके अर्थात् मोक्षपदकी प्राप्त हो जावे। इसमें यही सार है क्योंकि स्वर्ग नर्क वा पशु पर्यायमें तो सम्यक और उत्तम तपश्चरण पूर्ण हो ही नहीं सकता है, इसलिये यही मनुष्यजन्ममें श्रेष्ठ अवसर प्राप्त हुवा है ऐसा समझकर अपनी शक्ति व द्रव्य क्षेत्र काल भावोंको विचार करके अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छः बाह्य और प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः अभ्यंतर इस प्रकार बारह तपोंमें प्रवृत्ति करना सो सातवी शक्तितस्तप नामकी भावना कहाती है।

(८) जीव मात्रके कल्याण करनेवाले सम्यक धर्मकी प्रवृत्ति धर्मात्माओंसे होती है और धर्मात्माओंमें सर्वोत्तम सम्यक रत्नत्रयके धारी परम दिगम्बर साधु हैं इसलिये साधु वर्गोंपर आए हुए उपसर्गोंको यथासंभव दूर करना, सो साधु समाधि नामकी भावना है।

(९) साधु समूह तथा अन्य साधर्मीजनोंके शरीरमें किसी प्रकारकी रोगादिक व्याधि आ जानेसे उनके परिणामोंमें शिथिलता व प्रमाद आ जाना संभव है इसलिये साधर्मी (साधु व गृहस्थ) जनोंकी भक्ति भावसे उनको दर्शन तथा चारित्रमें स्थिर रखने तथा दीन दुःखी जीवोंको धर्म मार्गमें लगाकर उनके दुःख दूर करनेके लिये उनकी सेवा, तथा उपचार करनेको वैयावृत्यकरण भावना कहते हैं।

(१०) अर्हन्त भगवानके द्वारा ही मोक्षमार्गका उपदेश मिलता है, क्योंकि वे प्रभु केवल कहते ही नहीं हैं किन्तु स्वयं मोक्षके सन्निकट पहुंच गये हैं इसलिये उनके गुणोंमें अनुराग करना, उनकी भक्तिपूर्वक पूजन स्तवन तथा ध्यान करना, सो अर्हद्भक्ति भावना है।

(११) बिना गुरुके सच्चे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती इसलिये संघ ... उपदेश ... नायक दीक्षा शिक्षादि देकर विशेष धर्म मार्ग पर चलने और चलानेवाले आचार्य महाराजके गुणोंमें अनुराग करना सो आचार्यभक्ति नाम भावना है।

(१२) अल्पश्रुत ... ज्ञानवान पुरुषोंके द्वारा ... होती ... इसलिये ... अनुराग करना सो बहुश्रुतभक्ति नाम भावना है।

(१३) सदा अर्हंत भगवानके मुखारविन्दसे प्रगटित, मिथ्यात्वका नाश ... वीतराग ... स्वरूपको बतलानेवाला श्री जैन शास्त्रोंका पठन पाठनादि अभ्यास करना, सो प्रवचन भक्ति नाम भावना है।

(१४) मन वचन कायकी शुभाशुभ क्रियाओंको योग कहते हैं। इन्हीं योगोंके द्वारा शुभाशुभ कर्मोंका आस्रव होता है इसलिये यदि ये आस्रवके द्वार (योग) रोक दिये जाय, तो संवर (कर्मास्रव ...) हो सकता है और संवर

करनेका उत्तमोत्तम उपाय सामायिक प्रतिक्रमण आदि षडावश्यक हैं, इसलिये उन्हें नित्य प्रतिपालन करना चाहिये। पद्मासन या अर्द्धासनसे बैठकर सीधे नीचेको हाथ छोडकर, खड़े होकर मन वचन कायके समस्त व्यापारोंको रोककर, चित्तको एकाग्र करके एक ज्ञेय (आत्मा) में स्थिर करना सो समभावरूप सामायिक है। अपने किये हुए दोषोंको स्मरण करके उनपर पश्चात्ताप करना और उनको मिथ्या करनेके लिये प्रयत्न करना सो प्रतिक्रमण है। आगेके लिये दोष न होने देनेके लिये यथाशक्ति नियम करना (दोषोंका त्याग करना) सो प्रत्याख्यान है। तीर्थंकरादि अर्हंत आदि पंच परमेष्ठियों तथा चौवीस तीर्थंकरोंके गुण कीर्तन करना सो स्तवन है। मन, वच, काय शुद्ध करके चारों दिशाओंमें चार शिरोनति और प्रत्येक दिशामें तीन तीन आवर्त ऐसे बारह आवर्त करके पूर्व या उत्तर दिशामें अष्टांग नमस्कार करना तथा एक तीर्थंकरकी स्तुति करना सो वंदना है। और किसी समय विशेषका प्रमाण करके उतने समय तक एकासनसे स्थिर रहना तथा उतने समयके भीतर शरीरसे मोह छोड देना और उसपर आए हुए समस्त उपसर्ग व परीषहोंको सम भावोंसे सहन करना सो कायोत्सर्ग है। इस प्रकार विचार कर इन छहों आवश्यकोंमें जो सावधान होकर प्रवर्तन करता है सो परम संवरका कारण आवश्यकापरिहाणी नामकी भावना है।

(१८) काल दोषसे अथवा उपदेशके अभावसे संसारी जीवोंके द्वारा सत्य धर्मपर अनेकों आक्षेप होनेके कारण उसका लोप सा हो जाता है। धर्मके लोप होनेसे जीव भी धर्मरहित होकर संसारमें नाना प्रकारके दुःखोंको प्राप्त होते हैं। इसलिये ऐसे २ समयोंमें येन केन प्रकारेण समस्त जीवोंपर सत्य (जिन) धर्मका प्रभाव प्रगट कर देना, सो ही मार्ग प्रभावना है और यह प्रभावना जिन धर्मके उपदेशोंके प्रचार करने, शास्त्रोंके प्रकाशन व प्रसारणसे, शास्त्रोंके अध्ययन वा अध्यापन करने करानेसे, विद्वानोंकी सभायें कराने, अपने आप सदाचरण पालने, लोकोपकारी कार्य करने, दान देने, संघ निकालने व विद्यामंदिरोंकी स्थापना व प्रतिष्ठादि करने, सत्य व्यवहार करने, संयम नियम व तपादिक करनेसे होती है, ऐसा समझकर यथाशक्ति प्रभावनोत्पादक कार्योंमें प्रवर्तना सो मार्गप्रभावना नामकी भावना है।

(१६) संसारमें रहते हुए जीवोंको परस्परकी सहायता व उपकारकी आवश्यकता रहती है, ऐसी अवस्थामें यदि निष्कपट भावसे अथवा प्रेमपूर्वक सहायता न की जाय, तो परस्पर यथार्थ लाभ पहुंचना दुर्लभ ही है, इतना ही नहीं किन्तु

परस्परके विरोधसे अनेकानेक हानिया व दुःख होना सभव है। जैसे हो भी रहे हैं। इसलिये यह परमावश्यक कर्तव्य है क्रि प्राणी परस्पर (गायका अपने बछडे पर जैसा निष्कपट और प्रगाढ प्रेम होता है वैसा ही) निष्कपट प्रेम करें। विशेप-कर साधर्मियोंके संग तो कृत्रिम प्रेम कभी न करें। ऐसा विचार कर जो साधर्मियों तथा प्राणी मात्रसे अपना निष्कपट व्यवहार रखते हैं उसे प्रवचनवात्सल्य नामकी भावना कहते हैं।

इन भावनाओंको यदि ये केवली या श्रुतकेवली पादमूलके निकट अंतःकरणसे चिंतवन की जांय तथा तदनुसार प्रवर्तन किया जाय तो इनका फल तीर्थंकर नामकर्मके आश्रवका कारण है। आचार्य महाराज इस प्रकार भावनाओंका स्वरूप कहकर अब व्रतकी विधि कहते हैं।

क्रि भादो, माघ और चैत्र (गुजराती श्रावण, पौष और फाल्गुण) वदी १ से कुंवार फागुन और वैशाख वदी १ (गुजराती भादों, माघ, चैत्र वदी १ तक (एक वर्षमें तीन वार) पूरे एक एक मास तक व्रत करना चाहिये। इन दिनोंमें तेला, बेला आदि उपवास करे अथवा नीरस वा एक आदि दो तीन रस त्यागकर ऊनोदर पूर्वक अतिथि या दीन दुःखी नर वा पशुओंको भोजनादि दान देकर एक भुक्त करे; अंजन, मंजन, वस्त्रालंकार विशेष धारण न करे; शील-व्रत (ब्रह्मचर्य) रक्खे, नित्य षोडशकारण भावना भावे और यंत्र बनाकर पूजाभिषेक करे, त्रिकाल सामायिक करे और (ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैय्यावृत्यकरण, अर्हंतभक्ति, आचार्यभक्ति, उपाध्यायभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्यादि षोडशकारणेभ्यो नमः) इस महामंत्रका दिनमें तीन वार १०८ एकसौ आठ आठ जाप करे। इस प्रकार इस व्रतको उत्कृष्ट सोलह वर्ष, मध्यम ५ अथवा दो वर्ष और जघन्य १ वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करे। अर्थात् सोलह २ उपकर्ण श्री मंदिरजीमें भेंट दे और शास्त्र व विद्यादान करे, शास्त्र भंडार खोले, सरस्वती मंदिर बनावे, पवित्र जिन धर्मका उपदेश करे और करावे, इत्यादि। यदि द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो द्विगुणित व्रत करे। इस प्रकार ऋषिराजके मुखसे व्रतकी विधि सुनकर कालभैरवी नामकी उस ब्राह्मण कन्याने षोडशकारण व्रत स्वीकार करके उत्कृष्ट रीतिसे पालन किया, भावना भाई और विधि पूर्वक उद्यापन किया। पीछे वह आयुके अंतमें समाधिमरण द्वारा स्त्री लिंग

छेदकर सोलहवें (अच्युत) स्वर्गमें देव हुई। वहांसे बाईस सागर आयु पूर्ण कर वह देव, जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्र सम्बन्धी अमरावती देशके गंध। नगरमें राजा श्रीमंदिरकी रानी महादेवीके सीमंधर नामका तीर्थंकर पुत्र हुआ सो योग्य अवस्थाको प्राप्त होकर राज्योचित सुख भोग जिनेश्वरी दीक्षा ली, और घोर तपश्चरणकर केवलज्ञान प्राप्त करके बहुत जीवोंको धर्मोपदेश दिया। तथा आयुके अंतमें समस्त अघाति कर्मोंका भी नाश कर निर्वाणपद प्राप्त किया। इस प्रकार इस व्रतको धारण करनेसे कालभैरवी नामकी ब्राह्मण कन्याने सुर और नरभवोंके सुखोंको भोगकर अक्षय अविनाशी स्वाधीन मोक्ष सुखोंको प्राप्त कर लिया तो जो अन्य भव्य जीव इस व्रतको पालन करेंगे उनको भी अवश्य ही उत्तम फलकी प्राप्ति होवेगी।

षोडस कारण व्रत धरो, कालभैरवी सार। सुरनरके सुख "दीप" लह, लह्यो मोक्ष अविकार ॥ १ ॥

श्रुतस्कंध व्रत कथा।

श्रुतस्कंध वन्दू सदा, मन वच शीश नवाय। जा प्रसाद विद्या लहै, कहूं कथा सुखदाय ॥ १ ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक अंग नामका देश है, उसके पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें राजा चन्द्ररुचिकी पट्टरानी चन्द्रप्रभाके श्रुतशालनी नामकी एक अत्यन्त रूपवान कन्या थी सो राजाने इस कन्याको जिनमती नामकी आर्या (गुरानी) के पास पढनेको बैठाई जिससे वह थोड़े ही दिनोंमें, विद्यामें निपुण होगई। एक दिन इस कन्याने अपनी ही बुद्धिसे चौकीपर श्रुतस्कंध मंडल बनाया। इसे देखकर गुरानीको आश्चर्य हुआ और कन्याकी बहुत प्रशंसा की तथा समझा कि अब यह कन्या विद्यामें निपुण हो चुकी है, इसलिये उसे सहर्ष राजाके पास–अपने घर–जानेकी आज्ञा दी। राजा कन्याको विदुषी देखकर बहुत हर्षित हुआ और गुरानीकी भूरि भूरि स्तुति की तथा उचित पुरस्कार भी (भेंट) दिया।

एक दिन इसी नगरके उद्यानमें श्री वर्द्धमान मुनि आये। यह समाचार सुनकर राजा, अपने परिवार तथा पुरजनो सहित उत्साहसे वंदनाको गया और भक्तिपूर्वक वंदना करके मुनिचरणोंके निकट बैठा। मुनिराजने धर्मवृद्धि कहकर धर्मका स्वरूप समझाया। जिसे सुनकर लोगोंने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। पश्चात राजाने कन्याकी ओर देखकर पूछा–हे ऋषिराज ! यह कन्या किस पुण्यसे ऐसी रूपवान और विदुषी हुई है ? तब मुनिश्री बोलेः–

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशम पुण्डरीकनी नगरी है। वहाका राजा गुणभद्र और रानी गुणवती थी। सो एक समय ये राजा रानी सपरिवार श्री सीमंधर स्वामीकी वंदनाको गये और यथायोग्य भक्ति वंदना करके नर कोठेमें बैठे। पश्चात् सप्त तत्व और पुण्य पापका स्वरूप सुनकर श्री गुरुसे पूछा हे प्रभु, कृपाकर श्रुतस्कंध व्रतका क्या स्वरूप है? सो समझाइये। तब गणधर महाराजने कहा—कि श्री जिनेंद्र भगवानकी दिव्यध्वनि सातिशय निरक्षरी (वाणी) मेघकी गर्जनाके समान ॐकार रूप भव्यजीवोंके हितार्थ उनके पुण्यके अतिशयके कारण और भगवानके वचन वर्गणाके उदयसे खिरती है। इसे सर्व सभाजन अपनी २ भाषावोंमें समझ लेते हैं। इसी वाणीको चार ज्ञानधारी गणनायक मुनिने अल्पज्ञानी जीवोंके सम्बोधनार्थ (आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्यनांग, अंतकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, सूत्र विपाकांग और दृष्टिप्रवादांग) इस प्रकार द्वादशांग रूपसे कथन की। फिर इन्हीके आधारसे और और मुनियोंने भी भेदाभेद पूर्वक देश भाषाओंमें कथन की है। यह जिनेन्द्रवाणी समस्त लोकालोकके स्वरूप और त्रिकालवर्ती पदार्थोंको प्रदर्शित करनेवाली समस्त प्राणियोंके हितरूप मिथ्या मतोकी उत्थापक, पूर्ण परके विरोधोसे रहित अनुपमेय है, सो जो भव्य जीव इस वाणीको सुनकर हृदयस्थ करता अथवा उसकी भावना भा कर व्रत संयम धारण करता है, वह भी अनेक शास्त्रोंका पारगामी होजाता है। इसकी व्रतकी विधि इस प्रकार है कि, भादो मासमें नित्य श्री जिन चैत्यालयमें श्रुतस्कंध मंडल मांडकर श्रुतस्कंध पूजन विधान करे और एक मासमें उत्कृष्ट १६ मध्यम १० और जघन्य आठ उपवास करे। पारणाके दिन यथाशक्ति नीरस व एक दो आदि रस छोडकर एक भुक्त करे। इस प्रकार यह व्रत बारह वर्ष तक अथवा पाच वर्ष तक करे। पीछे उद्यापन करे। बारह बारह उपकरण घंटा झालर, पूजाके वासन, छत्र, चमर, चंदोवा, चौकी, वेष्टनादि मंदिरमें भेट करे, शास्त्र लिखाकर जिनालयमें पधरावे तथा श्रावकोको भेंट देवे और शास्त्रभंडारोकी सम्हाल करे, नवीन सरस्वती भवन बनावे, सर्व साधारण जनोको श्री जिनवाणीका उपदेश करे और करावे। इस प्रकार यह व्रत धारण करनेसे अनुक्रमसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होकर सिद्धपद प्राप्त होता है।

जाप्य नित्य दिनमें तीन वार जपे—“ ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः ”

और भावना भावे। इस प्रकार राजा गुणभद्र और गुणवती रानीने व्रतकी विधि सुनकर भाव सहित धारण किया और भावना भाई। सो अंत समय समाधिमरण कर अच्युतस्वर्गमें इन्द्र इन्द्राणी हुए, वहांसे वह रानीका जीव (इन्द्राणी) चय कर यह तेरे श्रुतशालनी नामकी कन्या हुई है। इस प्रकार गुरुमुखसे भवान्तर सुनकर उस कन्याने पुनः श्रुतस्कंध व्रत धारण किया और नारित्रके पालनसे निरय कषायोंको अतिशय मंद किये, पश्चात अंत समयमें समाधिसे मरण कर, स्त्री लिंगको छेदकर अहमिन्द्र पद प्राप्त किया और वहांके अनुपम सुख भोगकर अपर विदेह कुमुदवती देशके अशोकपुरमें पद्मनाभ राजाकी पट्टरानी जितपद्माके गर्भसे नयधर नाम तीर्थंकर हुआ। साथ ही चक्रवर्ती और कामदेव पदको भी सुशोभित किया। बहुत समय तक नीतिपूर्वक प्रजाका पालन किया। पश्चात एक दिन इन्द्र धनुषको आकाशमें विलीन होते देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ, सो अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म, इन वैराग्यको दृढ करनेवाली बारह भावनाओंका चिन्तवन कर दीक्षा ग्रहण की, और कितनेक काल तक उत्कृष्ट संयम पालकर शुक्ल ध्यानके योगसे केवलज्ञान प्राप्त किया तब देवोंने समवशरणकी रचना की। इस प्रकार अनेक देशोंमें विहार करके भव्य जीवोंको वस्तु स्वरूपका उपदेश किया और आयुके अंत समयमें अघाति कर्मोंको नाश करके अविनाशी सिद्धपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भी जो नरनारी भाव सहित इस व्रतको पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम पदको प्राप्त होवेंगे।

श्रुतशालिनि कन्या, किया श्रुतस्कंध व्रत सार। दीप कर्म सब नाशके, लयो मोक्ष सुखकार ॥

त्रिलोक तीज कथा।

वंदो श्री जिनदेव पद, वन्दू गुरु चरणार। वन्दू माता सरस्वती, कथा कहूं हितकार ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र सम्बन्धी कुरुजांगलदेशमें हस्तनागपुर नामका एक अति रमणीक नगर है। वहांका राजा कामदुक और रानी कमललोचना थी और उनके विशाखदत्त नाम पुत्र था। उस राजाके वरदत्त नामका एक मंत्री था।

जिसकी विशालाक्षी पत्नीसे विजयसुंदरी नामकी एक कन्या बहुत सुंदर थी। जिसका पाणिग्रहण राजपुत्र विशाखदत्तने किया था। कितनेक दिन बाद राजा कामंदुककी मृत्यु होनेपर युवराज विशाखदत्त राजा हुआ।

एक दिन राजा अपने पिताके वियोगसे व्याकुल हुआ उदास बैठा था कि उसी समय उस ओर विहार करते हुए श्री ज्ञानसागर नामके मुनिवर आये, राजाने उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उच्चासन दिया, तब मुनिने धर्मवृद्धिकर आशीष दी और इस प्रकार सम्बोधन करने लगे:—

राजा! सुनो यह काल (मृत्यु), सुर (देव), नर, पशु आदि किसीको भी नही छोडता है। संसारमें जो उत्पन्न होता है सो नियमसे नाश होता है। ऐसी विनाशीक वस्तुके सयोग वियोगमें हर्ष विषाद ही क्या? यह तो पक्षियोंके समान रैन (रात्रि) बसेरा है। जहाजमें देश देशातरके अनेक लोग आ मिलते हैं परन्तु अवधि पूरी होनेपर सब अपने२ देशको चले जाते है। इसी प्रकार ये जीव एक कुल (वश—परिवार) में अनेक गतियोंसे आ आकर एकत्र होते हैं और अपनी २ आयु पूर्णकर संचित कर्मानुसार यथायोग्य गतियोंको चले जाते हैं। किसीकी भी यह सामर्थ्य नहीं है, कि एक क्षण मात्र भी आयुको बढा सके। यदि ऐसा होता, तो बडे बडे तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि पुरुषोंको क्यों कोई मरने देता? मृत्युसे यद्यपि वियोग जनित दुःख अवश्य ही मोहके वश मालूम होता है तथापि उपकार भी बहुत होता है। यदि मृत्यु न होती, तो रोगी रोगसे मुक्त न होता, ससारी कभी सिद्ध न हो सकता, जो जिस दशामें होता उसीमें रहा आता, इसलिए यह मृत्यु उपकारी भी है, ऐसा समझकर शोक तजो। इस शोकमें (आर्त्तध्यानमें) अशुभ कर्मोंका बंध होता है जिससे अनेकों जन्मांतरों तक रोना पडता है रोना बहुत दुखदाई है।

मुनिके उपदेशसे राजाको कुछ धैर्य बंधा। वे शोक तजकर प्रजापालनमें तत्पर हुए, और मुनिराज भी विहार कर गये।

एक दिन रानीने संयमभूषण अर्जिकाके दर्शन करके पूछा—माताजी, मेरे योग्य कोई व्रत बताइये जिससे मेरी चिंता दूर होवे और जन्म सुधरे। तब आर्यिकाजीने कहा,—तुम त्रैलोक्य तीज व्रत करो। भादो सुदी ३ को उपवास करके तीन चौवीसी तीर्थङ्करोंके ७२ कोठेका मंडल मांडकर तीन चौवीसी पूजा विधान करो और तीनो काल १०८ आठ

जाप (ॐ ह्रीं भूत वर्तमान भविष्यत् काल सम्बन्धि त्रिचतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः) नथा, मतिकी [illegible]
न भी यानमें काट दिनोंमें, इस प्रकार तीन वर्ष तक यह व्रत कर और उद्यापन कर, अथवा द्विगुणित व्रत करे। जो उद्यापन
की शक्ति न हो तो व्रत दूना करे। उद्यापन करनेके समय तीन चौबीसीका मंडल मांडकर पूजा विधान करावे और प्रत्येक
प्रकारके उपकरण तीन २ श्री मंदिरजीमें भेट करे। मुनियोंको चार प्रकारका दान देवे। चारों संघको भोजन कराके। इस प्रकार
रानीने व्रतकी विधि सुनकर शिरोधार्य कर ग्रहण किया। [illegible] मैं भी समाधिमरण करके सोलहवें स्वर्गमें देव
होकर देव हुई। वहां नाना प्रकारके दैविक सुख भोगे, तथा अकृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी वंदना आदि करके सुखसे
समय व्यतीत किया। पश्चात् वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके रत्नपुर नगरमें राजा विमल और रानी [illegible]
के सुमति नामका अति रूपवान तथा गुणवान पुत्र हुआ। सो यह राजपुत्र एक दिन अपने मित्रों सहित वन-
क्रीडाको गया था, कि वहां परम दिगम्बर मुनिको देखकर उसे मोह उत्पन्न होगया, सो मुनिकी वंदना करके पास
निकट बैठा और पूछने लगा—हे प्रभु! आपको देखकर मुझे मोह क्यों उत्पन्न हुआ? तब श्रीगुरु कहने लगे—वत्स! सुन। यह
जीव अनादि कालसे मोहादि कर्मोंसे लिप्त हो रहा है, और इसी कारण इसके जिस समय जिस जिस प्रकारके [illegible]
कोन कोन कर्म उदयमें आते हैं, जिनके कारण यह प्राणी कभी सुख व कभी दुखको प्राप्त होता है। इस समय जो तुझे
यह मोह हुआ है उसका कारण यह है कि तेरे तीसरे भवमें तू रत्नपुरके राजा [illegible] भार्या विजयसुन्दरी
नामकी रानी थी, सो तूने मुझ सरीखे आर्यिकाके [illegible] करके पंचौषधि [illegible] व्रत लिया था, जिसके प्रभावसे तू
सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ था, और वहांसे चयकर यहां राजा विमलके सुमति नामका पुत्र हुआ है और मैं [illegible]
आर्यिकाका जीव वहांसे समाधिमरण करके स्वर्गमें देव हुआ वहांसे चयकर यहां मैं मनुष्य हुआ हूं, सो कोई एक कारण
पा दीक्षा लेकर विहार करता हुआ यहां आया हूं। इसलिये तुझे पूर्व स्नेहके कारण यह मोह हुआ है। हे वत्स! यह
मोह महादुःखका देनेवाला त्यागने योग्य है। यह सुन सुमतिको वैराग्य उत्पन्न हुआ, और उसने इस संसारको दुःखरूप
जानकर तत्काल जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। [illegible] घोर तपश्चरण करके केवलज्ञानको प्राप्त होकर
मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार विजयसुन्दरी रानीने [illegible] इस व्रतको पालकर देवों और मनुष्योंके उत्तम सुखोंको

भोगकर निर्वाण पद प्राप्त किया। सो यदि और भी भव्य जीव श्रद्धा सहित व्रत पालें तो वे भी ऐसी उत्तम गतिको प्राप्त होवेंगे।

विजयसुन्दरी व्रत कियो, तीन त्रिलोक महान। सुरनरके सुखभोगके, 'दीप' लही निर्वान ॥ १ ॥

मुकुटसप्तमीव्रत कथा।

पंच परमपद पद प्रणमि, सारदमात नमाय। मुकुटसप्तमी व्रत कथा, भाषा कहूं बनाय ॥

जम्बूद्वीपके कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगर है। यहांके राजा विजयसेनकी रानी विजयावतीके मुकुटशेखरी और विधिशेखरी नामकी दो कन्याएं थीं. इन दोनों बहिनोंमें परस्पर ऐसी प्रीति थी कि एक दूसरीके बिना क्षणभर भी नहीं रह सकती थीं। निदान राजाने ये दोनों कन्याएं अयोध्याके राजपुत्र तिलकमणिको व्याह दीं।

एक दिन बुद्धिसागर और सुबुद्धिसागर नामके दो चारणऋषि आहारके निमित्त नगरमें आये। सो राजाने उन्हें विधिपूर्वक पड़गाहकर आहार दिया और धर्मोपदेश श्रवण करनेके अनन्तर राजाने पूछा हे नाथ! मेरी इन दोनों पुत्रियोंमें परस्पर इतना प्रेम निरोग होनेका कारण क्या है? तब श्री ऋषिराज बोले-उसी नगरमें धनदत्त नामका एक सेठ था, उसके जिनदत्ती नामकी एक कन्या थी और वहीं एक मालीकी वनमती कन्या भी थी सो इन दोनों कन्याओंने मुनिके द्वारा धर्मोपदेश सुनकर मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया था। एक समय ये दोनों कन्याएं उद्यानमें खेल रही थी (मनोरंजन कर रही थीं) कि इन्हें सर्पने काट खाया सो नवकारमंत्रका आराधन करके देवी हुईं और वहांसे चयकर तुम्हारी पुत्री हुई हैं। सो इनका यह स्नेह भवान्तरसे चला आ रहा है। इस प्रकार भवान्तरकी कथा सुनकर दोनों कन्याओंने प्रथम श्रावकके पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत लिए और पुनः मुकुटसप्तमी व्रत भी धारण किया। सो प्रतिवर्ष श्रावण सुदी सप्तमीको प्रोषध करतीं और "ॐ ह्रीं श्रीवृषभतीर्थंकरेभ्यो नमः" इस मंत्रका जाप्य करतीं, तथा अष्ट द्रव्यसे श्री जिनालयमें जाकर भाव सहित जिनेन्द्रकी पूजा करतीं। इस प्रकार यह व्रत उन्होंने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया। पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करके सात सात उपकरण जिनालयमें भेंट किये।

इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अंतमें समाधिमरण करके सोलहवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रत्येन्द्र हुई। वहां पर देवोचित सुख भोगे और धर्म ध्यानमें विशेष समय विताया। पश्चात् वहांसे चयकर वे दोनो इन्द्र प्रत्येन्द्र मनुष्य होकर कर्म काटके मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार सेठकी तथा मालीकी कन्याओंने व्रत (मुकुटसप्तमी) पालकर स्वर्गोंके अपूर्व सुख भोगे अब वहांसे चयकर मनुष्य हो मोक्ष जावेंगे। धन्य है! जो और भव्य जीव भाव सहित व्रत धारण करें, तो वे भी इसी प्रकार सुखोंको प्राप्त होवेंगे।

श्रेष्ठी अरु माली सुता, मुकुट सातमव्रत धार। भये इन्द्र प्रत्येन्द्र द्वय, अरु हुई है भवपार ॥ १ ॥

अक्षयफलदशमी व्रत कथा।

ॐकार हृदय धरूँ, सरस्वतिको शिर नाय। अक्षयदशमी व्रत कथा, भाषा कहूं बनाय ॥ १ ॥

इसी राजगृह नगरमें मेघनाद नामके राजाके रानी पृथ्वीदेवी अत्यन्तरूप और शीलवान थी परन्तु कोई पूर्व पापके उदयसे पुत्रविहीन होनेसे सदा दुःखी रहती थी। एक दिन अति आतुर हो कहने लगी; हे भर्तार! क्या कभी मैं कुलमण्डन स्वरूप बालकको अपनी गोदमें खिलाऊँगी? क्या कभी ऐसा शुभोदय होगा, कि जब मैं भी पुत्रवती कहाऊँगी? अहा देखो! संसारमें स्त्रियोंको पुत्रकी कितनी अभिलाषा होती है। वे इस ही इच्छासे दिनरात व्याकुल रहती अनेको उपचार करती और कितनी ही तो (जिन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोड कर धर्म तकसे गिर जाती है यह सुनकर राजाने रानीसे कहा प्रिये! चिंता न करो, पुण्यके उदयमें सब कुछ होता है। हम लोगोने पूर्व जन्मोंमें कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि जिसके कारण निःसन्तान हो रहे हैं। इस प्रकार वे राजा रानी परस्पर धैर्य बधाते काल क्षेप करते थे। एक दिन उनके शुभोदयसे श्री शुभंकर नाम मुनिराजका शुभागमन हुआ, सो राजा रानी उनके दर्शनार्थ गये। वंदना करनेके अनन्तर धर्म श्रवण करके राजाने पूछा—हे प्रभु! आप त्रिकालज्ञानी हैं, आपको सब पदार्थ दर्पणवत् प्रतिभासित होते हैं, सो कृपा कर यह बताइये कि किस कारणसे मेरे घर पुत्र नही होता है?

चिंता बढती जाती थी। एक दिन वे राजा रानी इस प्रकार चिंता कर रहे थे, कि इस कुरूपा कन्याका पाणिग्रहण कौन करेगा? कि-पुण्य योगसे उन्हें वनमाली द्वारा यह समाचार मिला कि उद्यानमें श्रवणोत्तम नाम यतीवर देशदेशान्तरोंमें विहार करते हुए आये हैं। सो राजा उत्साह सहित स्वजन और पुरजनोंको साथ लेकर श्रीगुरुकी वंदनाके लिये वनमें गया और तीन प्रदक्षिणा देकर प्रभुको नमस्कार करके यथायोग्य स्थानमें बैठा।

श्रीगुरुने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और मुनि श्रावकके धर्मका उपदेश देकर निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय धर्मका स्वरूप समझाया।

पश्चात् राजाने नत मस्तक हो पूछा हे प्रभो! यह मेरी पुत्री किस पापके उदयसे ऐसी कुरूपा हुई है?

तब श्रीगुरुने कहा। कि अवन्ती देशमें पाडलपुर नाम नगर था। वहांका राजा सग्रामसह और रानी मधुन्धरा थी। उसी नगरमें देवशर्म नाम पुरोहित और उसकी कालसुरी नाम स्त्री थी। इस ब्राह्मणके अत्यन्त रूपवान एक कपिला नामकी कन्या थी। एक दिन यह कपिला कुमारी अपनी सखियोंके साथ अठखेलियां करती हुई वनक्रीडाके लिये नगरके बाहर गई, सो वहां श्री परम दिगम्बर साधुको देखकर उनकी अत्यन्त निंदा की और घृणाकी दृष्टिसे वह सखियोंसे कहने लगी देखो री बहिनो, यह कैसा निर्लज्ज पापी पुरुष है कि पशुके समान नग्न फिरा करता है और अपना अङ्ग स्त्रियोंको दिखाता है। लोगोंको ठगनेके लिये लघन करके वनमें बैठा रहता है, अथवा कभी कभी ऐसा ही नांगा वनमें वस्तीमें फिरता रहता है, धिक्कार है इसके नरजन्म पानेको। इत्यादि अनेको कुवचन कहकर मुनिके मस्तक पर धूल डाल दी, और थूक भी दिया।

सो अनेको उपसर्ग आनेपर भी श्री मुनिराज तो ध्यानसे किंचिन्मात्र भी विचलित न हुए और समभावोंसे उपसर्ग जीतकर केवलज्ञान प्राप्त कर परम पदको प्राप्त हुए, परन्तु वह कपिला जिसने मदोन्मत्त होकर श्री योगिराजको उपसर्ग किया था, मरकर प्रथम नरकमें गई। वहांसे निकलकर गधी हुई, फिर हाथिनी, फिर बिल्ली, फिर नागिनी फिर चाडालनी हुई और वहांसे मरकर तुम्हारे घर पुत्री हुई है। सो हे राजा! इस प्रकार मुनि निंदाके पापसे इसकी यह दुर्गति हुई।

तब श्री गुरुने भवांतरकी कथा विचारकर कहा–हे राजा ! पूर्व जन्ममें, उस तुम्हारी रानीने मुनि दानमें अन्तराय किया था। इसी कारणसे तुम्हारे पुत्रका अन्तराय हो रहा है। तब राजाने कहा प्रभु, कृपया कोई यत्न बताइये, कि जिससे इस पापकर्मका अन्त आवे।

यह सुनकर श्री मुनिराज बोले। वत्स, तुम अक्षय (फल) दशमीका व्रत करो। श्रावण सुदि १० को प्रोषध करके श्री जिनमंदिरमें जाकर भाव सहित पूजन विधान करो, पंचामृताभिषेक करो और "ॐ नमो वृषभाय" इस मंत्रका जाप्य करो। यह व्रत दश वर्षतक करके उद्यापन करो, दश दश उपकरण श्री मंदिरजीमें भेंट करो, दश शास्त्र लिखा-कर साधर्मियोंको भेंट करो और भी दीन दुःखी जीवोंपर दया दान करो, विद्यादान देवो, अनाथोंकी रक्षा करो जिससे शीघ्र ही पापका नाश हो सातिशय पुण्य लाभ हो इत्यादि विधि सुनकर राजा रानी आए और विधिपूर्वक व्रत पालन करके उद्यापन किया।

सो व्रतके माहात्म्य तथा पूर्व पापके क्षय होनेसे राजाको सात पुत्र और पांच कन्याएं हुई। इस प्रकार कितनेक कालतक राजा दया धर्मको पालन करते हुए मनुष्योचित सुख भोगते रहे। पश्चात समाधिमरण करके पहिले स्वर्गमें देव हुए और वहांसे चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्ष पद प्राप्त किया। इस प्रकार और भी अन्य जीव यदि श्रद्धासहित व्रत पालेंगे तो उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी।

अक्षय दशमी व्रत थकी, मेघनाद नृपसार। 'दीप' लही पंचम गती, नम त्रियोग सम्हार ॥

—❧—

श्रावण द्वादशीव्रत कथा।

प्रणमूं श्री अर्हन्त पद, प्रणमूं सारद माय। श्रावण द्वादशिव्रत कथा, कहूं भव्य हितदाय ॥

मालवा प्रांतमें पद्मावतीपुर नाम एक नगर था। वहांका राजा नरब्रह्म और रानी विजयवल्लभा थी। उनके शीलवती नामकी एक अति कुरूपा, कानी, कुबडी कन्या उत्पन्न हुई। ज्यों२ यह कन्या बडी होती थी सो२ मातापिताको

राजाने यह भवान्तरका वृतांत सुनकर पूछा, हे नाथ ! इसका यह पाप कैसे छूटे सो कृपा कर कहिये ?

तब स्वामीने कहा—राजा ! सुनो, संसारमें ऐसा कौनसा कार्य है कि जिसका उपाय न हो। यदि मनुष्य अपने पूर्व कर्मोंकी आलोचना निंदा व गर्हा करके आगेको उन पापोंसे पराङ्मुख होकर पुनः न करनेकी प्रतिज्ञा करे और पापोंकी निर्जरार्थ व्रतादिक करे तो पापोंसे छूट सकता है।

इसलिये यदि यह पुत्री सम्यक्त्वपूर्वक श्रावण शुक्ल द्वादशी व्रतको धारण करे तो इस कष्टसे छूट सकती है। उस व्रतकी विधि निम्न प्रकार है कि श्रावण सुदी एकादशीको प्रातःकाल स्नानादि करके श्री जिन पूजन करे और पश्चात् भोजन करके सामायिकके समय द्वादशी व्रतके उपवासकी धारणा (नियम) करे। उसी समयमें अपना काल धर्म ध्यानमें बितावे और द्वादशीको भी नियमानुसार उठकर नित्य क्रियामें निवृत्त हो श्रीजिनमंदिरमें जाकर उत्साह सहित पंचामृतमें अभिषेक पूर्वक अष्टद्रव्योंसे पूजन करे। अर्थात् पाठ और मंत्रोंको स्पष्ट बोलकर प्रासुक अष्टद्रव्य चढावे और णमोकार मंत्र (३५ अक्षर) का पुष्पोंद्वारा १०८ वार जाप्य करे। सामायिक स्वाध्यायादि धर्म ध्यानमें काल वितावे। फिर त्रयोदशीको इसी प्रकार अभिषेक पूर्वक पूजनादि करनेके पश्चात् किसी अतिथि या दीन दुखीको भोजन दान करके आप भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षमें एकवार करे। सो बारह वर्ष तक करे। पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे।

अर्थात् चारमुखी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करावे अथवा जहां मंदिर हो वहां चार महान ग्रन्थ लिखाकर जिनालयमें पधरावे, वेष्टन चौकी छत्र चमरादि उपकरण चढावे, परोपकारमें द्रव्य खर्च करे, व्यापार रहितोंको व्यापारार्थ पूंजी लगा देवे, पठनाभिलाषियोंको छात्रवृत्ति देकर पढनेको भेजे, रोगीको औषधि, निःसहाय दीनोंको अन्न वस्त्र औषधादि देवे, भयभीत जीवोंको भय रहित करे मरतेको बचावे इत्यादि। और यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दूना व्रत करे।

इस व्रतके फलसे यह तेरी कन्या यहांसे मरण करके तेरे ही घर अर्ककेतु नाम पुत्र होगा, और उससे छोटा चन्द्रकेतु होगा, सो चन्द्रकेतु युद्धमें मरकर पीछे अर्ककेतुका पुत्र होगा। पश्चात् अर्ककेतु कितनेक काल राज्य करके अंतमें माता सहित जिनदीक्षा लेगा सो समाधि करके बारहवें स्वर्गमें महर्द्धिक देव होगा और फिर मनुष्य भव लेकर तपके योगसे केवलज्ञानको प्राप्त हो मोक्षपद प्राप्त करेगा। इसकी माता विजयवल्लभा प्रथम स्वर्गमें देवी होगी। चन्द्रकेतुका जीव

भी अवसर पाकर सिद्धपदको प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा व्रतकी विधि और उसका फल सुनकर घर आया और यथाविधि कन्याने व्रत पालन करके श्री गुरुके कथनानुसार उत्तमोत्तम फल प्राप्त किये। इस प्रकार और भी जो स्त्री पुरुष श्रद्धासहित इस व्रतको पालन करेंगे वे भी इसी प्रकार उत्तम फल पावेंगे।

श्रावण द्वादशि व्रत कियो, शीलवती चितधार। किये अष्ट विधि नष्ट सब, लह्यो सिद्धपद सार॥

अथ रोहणी व्रत कथा।

वन्दू श्री अर्हन्त पद, मन वच शीश नमाय। कहू रोहणी व्रत कथा, दुख दरिद्र नश जाय॥

अङ्ग देशमें चम्पापुरी नाम नगरीका स्वामी मघवा नाम राजा था, उसकी परमसुन्दरी लक्ष्मीमती नामकी रानी थी। उसके सात गुणवान पुत्र और एक रोहिणी नामकी कन्या थी। एक समय राजाने निमित्तज्ञानीसे पूछा कि मेरी पुत्रीका वर कौन होगा? तब निमित्तज्ञानीने विचार कर कहा, कि हस्तिनापुरका राजा वीतशोक और उसकी रानी विद्युत्प्रभाका पुत्र अशोक तेरी पुत्रीका पाणिग्रहण करेगा।

यह सुनकर राजाने स्वयंवर मण्डप रचाया और सब देशोंके राजकुमारोंको आमंत्रण पत्र भेजे। जब नियत समय पर राजकुमारगण एकत्रित हुए तो कन्या रोहिणी एक सुन्दर पुष्पमाल लिये हुए सभामें आई, और सब राजकुमारोंका परिचय पानेके अनन्तर अन्तमें राजकुमार अशोकके गलेमें वरमाला डाल दी। राजकुमार अशोक रोहिणीको पाणिग्रहण कर घर ले आया, और कितनेक काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया।

एक समय हस्तिनापुरके वनमें श्री चारण मुनिराज आये। यह समाचार सुनकर राजा निज प्रिया सहित श्री गुरुकी वंदनाको गया और तीन प्रदक्षिणा दे दण्डवत् करके बैठ गया। पश्चात् श्री गुरुके मुखसे तत्वोपदेश सुनकर राजा हर्षित मन हो पूछने लगा—स्वामी मेरी रानी इतनी शांतचित्त क्यों है?

तब श्रीगुरुने कहा, सुनो, इसी नगरमें वस्तुपाल नामका राजा था, और उसका धनमित्र नामका मित्र था। इस

धनमित्रके एक दुर्गंधा कन्या उत्पन्न हुई। सो इस कन्याको देखकर माता पिता निरंतर चिंतावान रहते, कि इस कन्याको कौन वरेगा? पश्चात जब वह कन्या सयानी हुई तो धनमित्रने उसका व्याह धनका लोभ देकर एक श्रीषेण नामके लडके (जो कि उसके मित्र सुमित्रका पुत्र था) से कर दिया।

वह सुमित्रका पुत्र श्रीषेण अत्यन्त व्यसनासक्त था। एक समय वह जुआमें अपना सब धन हार गया। तब चोरी करनेको किसीके घरमें घुसा। उसे यमदंड नाम कोटपालने पकड लिया, और दृढ बंधनसे बाध दिया। उसी कठिन अव सरमें धनमित्रने श्रीषेणसे अपनी पुत्रीसे व्याह करनेका वचन ले लिया था। इसीलिये श्रीषेणने उससे व्याह तो कर लिया परन्तु वह स्त्रीके शरीरकी अत्यन्त दुर्गंधिसे पीडित होकर एक ही मासमें उसे परित्याग करके देशांतरको चला गया। निदान वह दुर्गंधा अत्यन्त व्याकुल हुई और अपने पूर्व पापोंका फल भोगने लगी।

एक समय अमृतसेन नामके मुनिराज उसी नगरके वनमें विहार करते हुए आये। यह जानकर सकल नगरलोक वंदनाको गये और धनमित्र भी अपनी दुर्गंधा कन्या सहित वंदनाको गया। सो धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर जब उसने अपनी पुत्रीके भवान्तर पूछे तब श्रीगुरुने कहा:—

सोरठ देशमें गिरनार पर्वतके निकट एक नगर है। वहां भूपाल नाम राजा राज्य करता था। उसके सिंधुमती नामकी रानी थी। एक समय वसंतऋतुमें राजा रानी सहित वनक्रीडाको चला सो मार्गमें श्री मुनिराजको देखकर राजाने रानीसे कहा कि तुम घर जा कर श्रीगुरुको आहारकी विधि लगाओ। राजाज्ञासे यद्यपि रानी घर तो आई। तथापि वनक्रीडा समय वियोग जनित संतापसे तप्त उस रानीने उस वियोगका सम्पूर्ण अपराध मुनिराजके माथे मढ दिया और जब वे आहारको तत्रैव आये तो पडगाह कर उन्हें कडुवी तूँवीका आहार दिया, जिससे मुनिके शरीरमें अत्यन्त वेदना उत्पन्न हो गई, और उन्होंने तत्काल प्राण त्याग कर दिये। नगरके लोग यह वार्ता सुनकर आये, और मुनिराजके मृतक शरीरकी अंतिम क्रिया कर रानीके द्वारा दुष्कृत्यकी निंदा करते हुए निज निज स्थानको चले गये। राजाको भी इस दुष्कृत्यकी खबर लग गई सो उन्होंने रानीको तुरन्त ही नगर बाहर निकाल दिया।

इस पापसे रानीके शरीरमें उसी जन्ममें कोढ़ उत्पन्न होगया जिससे शरीर गल गलकर गिरने लगा तथा शीत उष्ण

और भूख प्यासकी वेदनासे उसका चित्त विह्वल रहने लगा। इस प्रकार वह रौद्र भावोंसे मरकर नरक गई। वहां पर भी मारन, ताड़न, छेदन, भेदन, शूलीरोहणादि, घोरानघोर दुःख भोगे। वहांसे निकल कर नारकी पर्याय धारण किया और अब यह तेरे घर दुर्गंधा कन्या हुई है।

यह पूर्व वृत्तांत सुनकर रानीने पूछा हे नाथ! कोई व्रत विधानादि ऐसे कार्य बताइए जिससे यह पातक दूर हो। तब स्वामीने कहा कि सम्यग्दर्शन सहित रोहिणीव्रत पालन करो अर्थात् प्रतिमासमें रोहिणी नामका नक्षत्र जिस दिन होवे, उस दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग करे और श्री जिन चैत्यालयमें जाकर धर्मध्यान सहित सोलह पहर व्यतीत करे, अर्थात् सामायिक स्वाध्याय, धर्मचर्चा पूजा अभिषेकादिमें काल बितावे और स्वशक्ति अनुसार दान करे। इस प्रकार यह व्रत ५ वर्ष और ५ मास तक करे। पश्चात् उद्यापन करे। अर्थात् छत्र, चमर, ध्वजा, पाटला आदि उपकरण मंदिरमें चढ़ावे, साधुजनों व साधर्मी तथा विद्यार्थियोंको दान देवे। भोजन देवे, चारों प्रकारके दान देवे और जो द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो दूना व्रत करे।

दुर्गंधाने मुनिके मुखसे व्रतकी विधि सुनकर श्रद्धापूर्वक उसे धारण कर पालन किया और आयुके अन्त सन्यास सहित मरण कर प्रथम स्वर्गमें देवी हुई। वहांसे आकर तेरी राजाकी पुत्री और तेरी परमप्रिया स्त्री हुई है। इस प्रकार रानीके भवान्तर सुनकर राजाने अपने भवान्तर पूछे। तब स्वामीने कहा—तू प्रथम भवमें भील था तूने मुनिराजको घोर उपसर्ग किया, सो तू वहांसे मरकर पापके फलसे सातवें नरक गया। वहांसे तेतीस सागर दुःख भोगकर निकला। सो अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करता हुआ तूने एक वणिकके घर जन्म लिया। सो अत्यन्त घृणित शरीर पाया। लोग दुर्गंधिके मारे पास न आने देते थे। तब तूने मुनिराजके उपदेशसे रोहणी व्रत किया, उसके फलसे तू स्वर्गमें देव हुआ और फिर वहांसे चयकर विदेह क्षेत्रमें अर्ककीर्ति चक्रवर्ती हुआ। वहांसे दीक्षा ले तप करके देवेन्द्र हुआ और वहां स्वर्गसे आकर तू अशोक नामका राजा हुआ।

राजा अशोक यह वृत्तान्त सुनकर घर आया और कुछ कालतक सानन्द राज्य भोगा, पश्चात् एक दिन वहां वासुपूज्य भगवानका समवसरण आया सुनकर राजा वन्दनाको गया और धर्मोपदेश सुनकर अत्यन्त वैराग्यको प्राप्त हो

श्री जिन दिक्षा ली। रोहणी रानीने भी दीक्षा ग्रहण की। सो राजा अशोकने तो उसी भवमें शुक्ल ध्यानसे घाति कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये और रोहणी आर्या भी समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेद स्वर्गमें देव हुई, अब वह देव वहांसे चयकर मोक्षपद प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा अशोक और रानी रोहणी, रोहणीव्रतके प्रभावसे स्वर्गादिकके सुख भोगकर मोक्षको प्राप्त हुए व होंगे। उसी प्रकार अन्य भव्य जीव भी जो श्रद्धा सहित व्रत पालेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुख पावेंगे।

व्रत रोहिणि रोहनि कियो, अरु अशोक भूपाल। स्वर्गमोक्ष सपति लही, 'दीप' नवावत भाल ॥

आकाश पंचमी व्रत कथा।

द्वादशांगवाणी नमू, धरू हृदय शुभ ध्यान। कथाऽऽकाश पचमि तनी, कहू स्वपर हित जान ॥

आर्यखंडके सोरठ देशमें तिलकपुर नामका एक विशाल नगर था। वहां महीपाल नामका राजा और विचक्षणा नाम रानी थी। उसी नगरमें भद्रशाह नामका व्यापारी रहता था। उसकी नन्दा नाम स्त्रीसे विशाला नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। यद्यपि वह कन्या अत्यन्त रूपवान थी, तथापि इसके मुखपर सफेद कोढ होजानेसे सारी सुन्दरता नष्ट होगई थी। इसलिये उसके माता पिता तथा वह कन्या स्वयम् भी रोया करते थे, परन्तु कर्मोंसे क्या वश है? निदान माताके उपदेशसे पुत्री धर्मध्यानमें रत रहने लगी, जिससे कुछ दुःख कम हुआ।

एक दिन एक वैद्य आया और उसने सिद्धचक्रकी आराधना करके औषधि दी। जिससे उस कन्याका रोग दूर होगया। तब उस भद्रशाहने अपनी कन्या उसी वैद्यको व्याह दी। पश्चात् वह पिंगल वैद्य उस विशाला नामी वणिक पुत्रीके साथ कितने ही दिन पीछे देशाटन करता हुआ चित्तोडगढकी ओर आया। वहांपर भीलोंने उसे मारकर सब धन लूट लिया। निदान विशाला वहांसे पति और द्रव्य रहित हुई नगरके जिनालयमें गई और जिनराजके दर्शन करके वहां तिष्ठे हुए श्रीगुरुको नमस्कार करके बोली। प्रभु मैं अनाथनी हूं, मेरा सर्वस्व खो गया—पति भी मारा गया और द्रव्य भी लुट गया। अब मुझे कुछ नहीं सूझता है कि क्या करूं, कृपा कर कुछ कल्याणका मार्ग बतावे ?

तब मुनिराजने कहा—बेटी ! सुनो यह जीव सदा अपने ही पूर्वकृत कर्मोंका शुभाशुभ फल भोगता है। तू प्रथम जन्ममें इसी नगरमें वेश्या थी। तू रूपवान तो थी ही, परन्तु गायन विद्यामें भी निपुण थी। एक समय सोमदत्त नामक मुनिराज यहां आये। यह सुनकर नगरके लोग वंदनाको गये और बहुत उत्साहसे उत्सव किया। सो जैसे सूर्यका प्रकाश उल्लूको अच्छा नहीं लगता। उसी प्रकार कुछ मिथ्यात्वी विधर्मी लोगोंने मुनिसे वादविवाद किया और अन्तमें हार कर वेश्या (तुझे ही)को मुनिके पास उनके डिगानेके लिये (भ्रष्ट करनेको) भेजा सो तूने पूर्ण रीतिसे चेष्टा की। सब प्रकार रिझाया, शरीरका भी आलिंगन किया, परन्तु जैसे सर्पके फुफकारनेसे गरुड़का कुछ बिगाड़ता ही नहीं किंतु फुफकारनेवाले सर्पका ही बिगाड़ होता है। उसी प्रकार मुनिराज तो अपने संयममें स्थिर रहे, और तू हार मान कर लौट आई। इससे उन मिथ्यात्वी अधर्मियोंको बड़ा दुःख हुआ, और तुझे भी बहुत पश्चात्ताप हुआ। अन्तमें तुझे कोढ़ हो गया, सो दुःखित अवस्थामें मर कर तू चौथे नर्क गई। वहांसे आकर तू यहां वणिकके घर पुत्री हुई है यहां भी तुझे सफेद कोढ़ हुआ था सो पिंगल वैद्यने तुझे अच्छा किया और उसीसे तेरा पाणिग्रहण भी हुआ था। पश्चात पूर्व पापके उदयसे चोरोंने उसे मार डाला, और तू उनसे बचकर यहां तक आई है। अब यदि तू कुछ धर्माचरण धारण करेगी, तो शीघ्र ही इस पापसे छूटेगी इसलिये सबसे प्रथम तू सम्यग्दर्शनको स्वीकार कर अर्थात श्री अर्हंत देव, निर्ग्रंथगुरु और दयामई जिन भगवानके कहे हुए धर्मतत्त्वके सिवाय अन्य मिथ्या देव गुरु और धर्मको छोड़, जीवादिक सात तत्त्वोंका श्रद्धान कर और सम्यग्दर्शनके निःशंकित आदि आठ अंगोंका पालन करके उसके २५ मल-दोषोंको त्यागकर; तब निर्मल सम्यग्दर्शन होगा। इस प्रकार सम्यक्त्व पूर्वक श्रावकके अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहप्रमाण आदि १२ व्रतोंको पालन करते हुए आकाश पंचमी व्रतको भी पालन कर।

यह व्रत भादों सुदी ५ को किया जाता है। इस दिन चार प्रकारके आहार त्यागकर उपवास धारण करे, और अष्टप्रकारकी द्रव्यसे श्री जिनालयमें जाकर भगवानकी अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पश्चात रात्रिके समय खुले मैदानमें व छत (आगासी) पर बैठकर भजन पूर्वक जागरण करे। तथा वहां भी सिंहासन रखकर श्री चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा स्थापन करे, और प्रत्येक पहरमें अभिषेक पूर्वक पूजन करे, और यदि उस समय उस स्थानपर पानी आदिके कारण

कितने ही उपसर्ग आवें तो सब सहन करे परन्तु स्थानको न छोडे। तीनों समय महामंत्र नवकारके १०८ जाप करे, इस प्रकार ५ वर्ष तक करे। जब व्रत पूरा हो जावे तो उत्साह सहित उद्यापन करे।

छत्र, चमर, सिंहासन, तोरण, पूजनके वर्तन आदि प्रत्येक ५ पांच नग मंदिरमें भेंट करे और कमसे कम पाच शास्त्र पधरावे। चार प्रकारके संघको आवश्यक्तानुसार चारों प्रकारके दान देवे, और भी प्रभावना विशेष करे। इस प्रकारसे विशाला कन्याने श्रद्धा पूर्वक बारह व्रत स्वीकार किये और उस आकाशपंचमी व्रतको भी विधि सहित पालन किया। पश्चात् समाधिमरण कर वह चौथे स्वर्गमें मणिभद्र नामका देव हुआ। वहा उसने देवांगनाओं सहित क्रीडा करते हुए अनेक तीर्थोंके दर्शन पूजा वंदना तथा समोशरण आदिकी वदना की। इस प्रकार सात सागरकी आयु पूर्ण कर उज्जैन नगरमें प्रियंगुसुन्दर नाम राजाके यहा तारामती नाम रानीसे सदानद नाम पुत्र हुआ। सो कितनेक काल राज्योचित सुख भोगे। पश्चात् एक दिन नगर बाहर वनमें मुनिराजके दर्शन कर और उनके मुखसे ससारसे पार उतारनेवाले धर्मका उपदेश सुनकर उसने वैराग्यको प्राप्त होकर जिन दीक्षा अंगीकार की। और शुक्लध्यानके बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इस प्रकार विशाला नामकी वणिक कन्याने व्रतके प्रभावसे स्वर्ग और मोक्षका पद प्राप्त किया, तो यदि श्रद्धा सहित अन्य जीव व्रत पालेंगे तो क्यों नहीं उत्तम सुखोंको प्राप्त होवेंगे? अवश्य होंगे।

सुता विशाला वणिक व्रत, आकाशपचमी पाल। स्वर्ग मोक्ष सम्पति लही, 'दीप' नमावत भाल॥

कोकिला पंचमी व्रत कथा।

ॐकार वाणी नमू, स्याद्वाद मयसार। जा प्रसाद सन्मति मिले, कथा कहू सुखकार॥

कुरुजांगल देशमें गगा नदीके किनारे राजनगर है, वहाका राजा वीरसेन न्यायपरायण और धर्मात्मा था। इसी नगरमे दो वणिक श्रेष्ठि रहते थे। एकका नाम धनपाल और दूसरेका नाम जिनभक्त था। धनपाल सेठके

धनमती नामकी सेठानीसे धनभद्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और जिनभक्त सेठके घर जिनमती नामकी कन्या उत्पन्न हुई सो कर्मयोगसे इन दोनो वर कन्या (धनभद्र और जिनमति) का पाणिग्रहण संस्कार भी हो गया। तब जिनमती पतिके साथ ससुराल गई और गृहस्थोंकी रीतिके अनुसार अपने पतिके साथ नाना प्रकारके सुख भोगने लगी परन्तु पूर्वकर्म संयोगसे जिनमति और उसकी सासुमें अनबनाव सा रहने लगा। कुछ कालके अनन्तर धनपाल सेठ कालवश हुआ। तब जिनमतीने सासुसे कहा-माताजी! पतिका क्रिया कर्म कीजिए और दानादिक शुभ कर्म करिए। इस पर सासुने ध्यान नहीं दिया किन्तु उल्टा उसने बहूसे रिस करके पूजा होम आदिका सामान जो बहूने इकट्ठा कर रखा था रात्रिको उठकर भक्षण कर लिया सो तिल आदि पदार्थोंके भक्षण करनेसे उसे अजीर्ण होगया और वह उदीरणा मरणसे मरकर अपने ही घरमें कोकिला (गृहगोधा) हुई। जिनमति अपने पति धनभद्र सहित सुखसे कालक्षेप करने लगी। उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, सो हर समय अपने पूर्व वैरके कारण जिनमतिके ऊपर बीट (मल) कर दिया करे। इस कारण जिनमति बहुत दुःखित रहने लगी। एक दिन भाग्योदयसे श्री मुनिराज विहार करते हुए वहां आ गये, सो जिनमति स्नानकर पवित्र वस्त्र पहिर श्री गुरुके दर्शनको गई। और भक्ति पूर्वक स्तुति वंदना करके शांति पूर्वक, यथार्थ देवगुरुधर्मका व्याख्यान सुना। पश्चात् नत मस्तक होकर बोलीः-हे प्रभु! यह कोकिला नामका न जाने कौन दुष्ट जीवधारी है, जो हमको निश-दिन दुःख देता है। तब श्री गुरुने कहा, यह तेरी सासु धनमतीका जीव है। इसने पूर्वभवमें पूजा होम आदिका सामान नैवेद्य तिल आदि भक्षण किया जिससे यह अजीर्ण रोगसे आयुकी उदीरणा कर मरी और कोकिला हुई है। सो उसी भवके वैरके कारण यह तुझे कष्ट पहुचाती है।

तब जिनमतिने कहा-स्वामीजी यह पाप कैसे छूट सकता है?

श्री मुनिराजने उत्तर दिया-बेटी! संसारमें कुछ भी कठिन नहीं है। यथार्थमें सब काम परिश्रमसे सरल होजाते हैं। तुम अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामई धर्मपर श्रद्धा रखकर, कोकिला पंचमी व्रत पालन करो तो निःसन्देह यह उपद्रव दूर हो जायगा। इसके लिये तुम आषाढ़ वदी पंचमीसे ५ मास तक प्रत्येक कृष्ण पक्षकी ५ को, इस प्रकार एक वर्षकी पांच पांच पंचमी पांच वर्षों तक करो। अर्थात् इन दिनोंमें प्रोसह धारण कर अभिषेकपूर्वक जिन पूजा करो और धर्म

ध्यानमें धारणा पारणा सहित सोलह पहर व्यतीत करो। सुपात्रोंमें भक्ति दीन दुखी जीवोंको करुणा पूर्वक दान देवो पश्चात् उद्यापन करो। पांच जिनविम्ब पधराओ। पांच शास्त्र लिखाओ, पांच वर्णका पंच परमेष्ठीका मण्डल मांड कर श्री जिन पूजा विधान करो। पांच प्रकारका पकान्न बना कर चार संघको भोजन कराओ। पांच गागर पंच प्रकारके मेवोंसे भर कर श्रावकोंको भेंट दो। पांच ध्वजा चैत्यालयमें चढाओ। पांच चंदेवा, पांच अछार, पांच छत्र, पांच चमर आदि पांच पांच उपकरण बनवाकर मंदिरमें भेंट चढ़ावो। विद्यालय बनवावो, श्राविकाशालाएं खोलो, रोगी जीवोंके रोग निवारणार्थ औषधालय नियत करो इस प्रकार शक्ति प्रमाण चतुर्विधि दान शालाएं खोलकर स्वपर हित करो। तथा श्रद्धा सहित व्रत उपवास करो। यह सुनकर जिनमतिने मुनिको नमस्कार करके व्रत लिया। और उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, उसने भी अपने भवान्तरकी कथा गुरुमुखसे सुनकर अपनी आत्म निन्दा की और शुभ भावोंसे मरकर स्वर्गमें देवी हुई। जिनमती और धनभद्र भी व्रतके प्रभावसे स्वर्गमें देव हुए। अब वहांसे आकर विदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार जिनमती और धनभद्रने कोकिला पंचमी व्रत पालन कर उत्तम गतिका बंध किया। जो अन्य नरनारी व्रतकर करें तो क्यों न उत्तम पदको प्राप्त होवेंगे? अवश्य ही होवेंगे।

धनभद्र अरु जिनमती, कोकिल पंचमी सार। कियो व्रत्य शुभ चव कर, जासे मुक्ति मझार ॥

चंदनषष्ठी व्रत कथा।

देव नमो अर्हंत नित, वीतराग विज्ञान। चंदनषष्ठी व्रत कथा, कहूं स्वपरहित जान ॥

काशी देशमें बनारस नामका प्रसिद्ध नगर है जिसको वाईसमें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवानने अपने जन्म धारण करने कर पवित्र किया था, उसी नगरमें किसी समय एक सूरसेन नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम पद्मिनी था। एक दिन वह राजा सभामें बैठा था, कि वनपालने आकर छः ऋतुवोंके फलफूल लाकर राजाको भेंट किये। राजा इस शुभ भेंटसे केवली भगवानका शुभागमन जानकर, स्वजन और पुरजनो सहित वंदनाको गया और

भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा दे नमस्कार करके बैठ गया। श्री मुनिराजने प्रथम ही मुनिधर्मका वर्णन करके पश्चात् श्रावक धर्मका वर्णन किया। उसमें भी सबसे प्रथम सब धर्मोंका मूल सम्यग्दर्शनका उपदेश किया कि वस्तु स्वरूपका यथार्थ श्रद्धान हुए विना सब ज्ञान और चारित्र निष्फल है और यह वस्तु स्वरूपका श्रद्धान सत्यार्थ देव (अर्हंत), सत्यार्थ गुरु (निर्ग्रन्थ) और दयामई (जिन प्रणीत) धर्ममें ही होता है, अतएव प्रथम ही इनका परीक्षापूर्वक श्रद्धान होना आवश्यक है। तत्पश्चात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और परिग्रह त्याग ये पांच व्रत एकदेश पालन करे तथा इन्हींके यथोचित पालनार्थ सप्त शीलो (तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतों) का भी पालन करे इत्यादि उपदेश दिया तब राजाने हाथ जोडकर पूछा–हे प्रभु! रानीके प्रति मेरा अधिक स्नेह होनेका क्या कारण है? यह सुनकर श्री गुरुने कहा–

राजा! सुनो, अवंतीदेशमें एक उज्जैन नामका नगर है, वहां वीरसेन नाम राजा और उसकी रानी वीरमती थी। उसी नगरमें जिनदत्त नामक एक सेठके उसकी जयावती नाम सेठानीसे ईश्वरचन्द्र नामका पुत्र भी था जो कि अपनी मामाकी पुत्री चन्दनाका पाणिग्रहण कर सुखसे कालक्षेप करता था। एक समय सेठ जिनदास और सेठानी जयावती कुछ कारण पाकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहणकर मुनि हो गये। और तपके माहात्म्यसे अपनी २ आयु पूर्ण कर स्वर्गमें देव देवी हुए।

और पिताका पद प्राप्त करके ईश्वरचन्द्र सेठ भी चन्दना सहित सुखसे रहने लगा। एक दिन अतिमुक्तक नामके मुनिराज मासोपवासके अनंतर नगरमें पारणा निमित्त आए सो ईश्वरचन्द्रने भक्ति सहित मुनिको पडगाह कर अपनी स्त्रीसे कहा कि श्री गुरुको आहार देओ तब चन्दना बोली–स्वामी! मैं ऋतुमती हूं कैसे आहार दूं? ईश्वरचन्द्रने कहा कि चुपचुप रहो हल्ला मत करो। गुरुजी मासोपवासी हैं, इसलिये शीघ्र पारणा कराओ।

चन्दनाने पतिके कथनानुसार मुनिराजको आहार दे दिया सो श्री मुनिराज तो आहार करके वनमें चले गये। और यहां तीन ही दिन पश्चात् इस गुप्त पापके उदय होनेसे पति पत्नि दोनोंके शरीरमें गलित कुष्ट होगया सो अत्यन्त दुःखी हुए और कष्टसे दिन विताने लगे। एक दिन भाग्योदयसे श्रीभद्र मुनिराज सब सहित उद्यानमें पधारे सो नगरके लोक वंदनाको गये, और ईश्वरचन्द्र भी अपनी भार्या सह वंदनाको गया सो भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बैठा और

धर्मोपदेश सुना। पश्चात् पूछने लगा—हे दीनदयाल! हमारे यह कौन पापका उदय आया है कि जिससे यह विथा उत्पन्न हुई है? तब मुनिराजने कहा, कि तुमने गुप्त कपट कर पात्रदानके लोभसे अतिमुक्तक स्वामीको ऋतुमती होनेकी अवस्थामें भी आहार पान व मन वचन काय शुद्ध है कहकर आहार दिया है। अर्थात् तुमने अपवित्रको भी पवित्र कहकर चारित्रका अपवाद किया है सो इसी पापके कारणसे यह असाता वेदनी कर्म उदय आया है। यह सुनकर उक्त दम्पति (सेठ सेठानी) ने अपने अज्ञान कृत्यपर बहुत पश्चात्ताप किया और पूछा—प्रभु! अब कोई उपाय इस पापसे मुक्त होनेका बताईये? तब श्री गुरुने कहा—हे भद्र सुनो! भादो सुदी षष्ठी (गुजराती श्रावण सुदी ६) को चारों प्रकारके आहारका त्याग करके उपवास धारण करो तथा जिनालयमें जाकर पंचामृतसे अभिषेक पूर्वक पूजन करो अर्थात् छः प्रकारके उत्तम और प्रासुक फलों सहित अष्ट द्रव्यसे छः अष्टक चढावो, अर्थात् छः पूजा करो। एक सौ आठ १०८ वार नमोकार मंत्रका फलों व फूलों द्वारा जाप करो, चारों संघको चार प्रकारका दान देवो। इस प्रकार व्रत करो, तीनों काल सामायिक व्रत, अभिषेक, पूजन करो, रात्रिको भजनपूर्वक जागरण करो, घरके आरम्भ व विषय कषायोंका उपवासके दिन और रात्रिभर आठ पहर तथा धारणा पारणाके दिन ४ चार पहर ऐसे सोला पहरों तक त्याग करो। इस प्रकार छः वर्ष तक यह व्रत करो। पश्चात् उद्यापन करो। अर्थात् जहां जिनमंदिर न हो, वहां वहां छः जिनालय बनवावो, छः जिन बिम्ब पधरावो, छः जिन मंदिरोंका जीर्णोद्धार करावो। छः शास्त्रोंका प्रकाशन करो। छः छः सब प्रकारके उपकरण मंदिरोंमें चढावो। छः छात्रोंको भोजन करावो। चार प्रकारके (आहार औषध शास्त्र और अभयदान) दान देवो।

इस प्रकार दम्पतिने व्रतकी विधि सुन मुनिराजकी साक्षीपूर्वक व्रत ग्रहण करके विधि सहित पालन किया। कुछ दिनोंमें अशुभ कर्मकी निर्जरा होनेसे उनका शरीर बिलकुल निरोग होगया और आयुके अन्तमें सन्यास मरण करके वे दम्पति स्वर्गमें रत्नचूल और रत्नमाला नामके देव देवी हुए। सो बहुत काल तक सुख भोगते और नंदीश्वर आदि अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजा वंदना करते काल क्षेप करते रहे। अन्तमें आयु पूर्ण कर वहांसे चयकर तुम राजा हुए हो, और वह रत्नमाला देवी तुम्हारी पट्टरानी पद्मिनी हुई है। सो यह तुम दोनोंका पूर्व भवोंका सम्बन्ध होनेसे ही प्रेम विशेष हुआ है। यह वार्ता सुनकर राजाको भव भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, सो उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देकर

आप दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण किया। और तपके प्रभावसे थोड़े ही कालमें केवलज्ञान प्राप्त करके वे सिद्ध पदको प्राप्त हुए।

और रानी पद्मिनीके जीवने भी दीक्षा ली, सो वह भी तपके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे चय मनुष्य भव लेकर मोक्ष पद प्राप्त करेगा। इस प्रकार ईश्वरचंद्र सेठ और चन्दना सेठानीने इस चन्दन पष्ठी व्रतके प्रभावसे नरसुरके सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया व करेंगे। और जो कोई नरनारी व्रत पालेंगे, वे भी अवश्य उत्तम पद पावेंगे।

चन्दन षष्ठी व्रत थकी. ईश्वरचन्द्र सुजान। अरु तिस नारी चन्दना, पायो सुख महान॥

निर्दोष सप्तमी व्रत कथा।

सहित आठ अरु वीस गुण, नमूं साधु निर्ग्रन्थ। सप्तमी व्रत निर्दोषकी, कथा कहूं गुण ग्रन्थ॥

मगध देशके पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें पृथ्वीपाल राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम मदनावती था। इसी नगरमें अर्हदास नामका एक सेठ रहता था जिसकी लक्ष्मीमती नामकी स्त्री थी और एक दूसरा सेठ धनपति जिसकी स्त्रीका नाम नदनी था, रहता था। नंदनी सेठानीके मुरारी नामका एक पुत्र था सो सांपके काटनेसे मर गया, इसलिए नंदनी तथा उसके घरके लोग अत्यन्त करुणाजनक विलाप करते थे अर्थात सब ही शोकमें निमग्न थे। नंदनी तो बहुत ही शोकाकुल रहती थी, उसे ज्यों ज्यों कोई समझाता था त्यों त्यों अधिकाधिक शोक करती थी। एक दिन नंदनीके रुदन (जिसमें पुत्रके गुणगान करती हुई रोती थी) को सुनकर लक्ष्मीमती सेठानीने समझा कि नंदनीके घर गायन हो रहा है। तब वह सोचने लगी कि नन्दनीके घर तो कोई मंगल कार्य नहीं है, अर्थात व्याह व पुत्र जन्मादि उत्सव तो कुछ भी नहीं है तब किस कारण गायन हो रहा है? अच्छा, चलकर पूछ तो सही कि क्या बात है? ऐसा विचार कर लक्ष्मीमती सहज स्वभावसे हंसती हुई नंदनीके घर गई और नंदनीसे हंसते हंसते पूछा ऐ बहिन! तुम्हारे घर कोई मंगल कार्य है ऐसा तो सुना ही नहीं गया, तब यह गायन किसलिये होता रहता है। कृपया बताओ?

तब नंदनी रिस करके बोली—अरी बाई ! तुझे हंसीकी पडी है और मुझपर तो दुःखका पहाड टूट पडा है। मेरा कुलका दीपक, प्यारा, आंखोंका तारा पुत्र सर्पके काटनेसे मर गया है, इसीसे मेरी नींद और भूख प्यास सब चली गई है, मुझे संसार अंधेरा लगता है। दुःखियाने दुःख रोया सुखियाने हंस दिया। मुझे रोना आता है और तुझे हंसना आता है। जा, जा ! अपने घर एक दिन तुझे भी अतुल दुःख आवेगा, तब जानेगी कि दूसरेका दुःख कैसा होता है ?

इसपर लक्ष्मीमती अपने घर चली गई और नंदनीने उससे निष्कारण वैर कर सांप मंगाया और एक घडेमें धरवाकर लक्ष्मीमतीके घर भिजवा दियाँ, और कहला दिया कि इस घडेमें सुन्दर हार रक्खा है सो तुम पहिरो। नंदनीका अभिप्राय था कि जब लक्ष्मीमती घडेमें हाथ डालेगी तो सांप इसे काटेगा और यह दुःखियोंकी हँसी करनेका फल पावेगी।

जब दासी लक्ष्मीमतीके घर वह विषले सापका घडा लेकर गई, और यथायोग्य मुश्रूपाके वचन कर वह घडा भेंट कर दिया, तब लक्ष्मीमतीने दासीको तो पारितोषक देकर विदा किया, और आपने घडेको उघाड कर उसमेंसे हार निकाल कर पहिर लिया (लक्ष्मीमतीके पुण्यके प्रभावसे सांपका हार हो गया है) और हर्ष सहित जिनालयको वंदना निमित्त गई। सो मदनावती रानीने उसे देख लिया और राजासे लक्ष्मीमतीके जैसा हार मगा देनेके लिए हठ करने लगी।

इस पर राजाने अर्हदास सेठको बुलाकर कहा—हे सेठ ! जैसा हार तुम्हारी सेठानीका है वैसा ही रानीके लिए बनवा दो, और जो द्रव्य लगे सो भण्डारसे ले जाओ। तब अर्हदास श्रेष्ठिने सेठानीसे लेकर वही हार राजाको दिया। सो राजाके हाथमें पहुंचते ही हारका पुनः सर्प हो गया इस प्रकार वह सांप अर्हदासके हाथमें हार और राजाके हाथमें साप हो जाता था। यह देखकर राजा व सभाजन सभी आश्चर्ययुक्त हो हारका वृतान्त पूछने लगे; परन्तु सेठ कुछ भी कारण न बता सका।

भाग्योदयसे वहां मुनि संघ आया सो राजा और प्रजा सभी वंदनाको गये। वंदना कर धर्मोपदेश सुना और अन्तमें राजाने वह हार और सांपवाली आश्चर्यकी बात पूछी। तब मुनिराजने कहा—हे राजा ! इस सेठने पूर्व भवमें निर्दोष सातमका व्रत किया है उसीके पुण्य फलसे यह सांपका हार बन जाता है।

और तो बात ही क्या है इस व्रतके फलसे स्वर्ग और अनुक्रमसे मोक्षपद भी प्राप्त होता है, और इस व्रतकी विधि इस प्रकार है। सो सुनो:—

भादों सुदी ७ को आवश्यक वस्त्रादि परिग्रह रखकर शेष समस्त आरम्भ व परिग्रहका त्याग करके श्री जिन मंदिरमें जावे और प्रभुका अभिषेक आरम्भ करे। अर्थात् वहांपर दूधका कुण्ड भरके उसमें प्रतिमा स्थापन करे और पचामृतका स्नान करा करनेके पश्चात् अष्ट द्रव्यसे भाव सहित पूजन करे। त्रिकाल सामायिक करे और स्वाध्याय करे। इस प्रकार दिन रात धर्म ध्यानमें वितावे। पश्चात् दूसरे दिन हर्षोत्सव सहित जिनदेवका पूजन अर्चन करके अतिथिको भोजन करा कर और दीन दुखियोंको यथावश्यक दान देकर आप भोजन करे। इस प्रकार सात वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् विधि पूर्वक उद्यापन करे और यदि उद्यापनकी शक्ति न हो, तो दूने वर्षों तक व्रत करे।

उद्यापन इस प्रकार करे—बारह प्रकारका पक्वान्न, और बारह प्रकारके फल, तथा मेवा श्रावकोंको बांटे। बारह बारह कलश, झारी, झालर, चदेवा आदि समस्त उपकरण जिन मंदिरमें चढावे। बारह शास्त्र लिखाकर पधरावे और चतुर्विधि दान करे।

राजाने यह सब व्रत विधान सुनकर स्वशक्ति अनुसार श्रद्धा सहित इस व्रतको पालन किया और अन्तमें आयु पूर्णकर (समाधिमरण कर) सातवें स्वर्गमें देव हुआ। और भी जो भव्य जीव श्रद्धा सहित इस व्रतको पालेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त होंगे।

नरपति पृथ्वीपाल अरु, अरहदास गुणवान। व्रत सातम निर्दोष कर, लहो स्वर्ग सुख दान॥

निसल्ल अष्टमी व्रत कथा।

वन्दूं नेमि जिनेन्द्र पद, बाईसवें अवतार। कथा निसल्ल आठम तनी, कहूं सु सुखदातार॥

भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें सोरठ नामका देश है (वर्तमानमें इसे काठियावाड़ कहते हैं) इस देशमें द्वारका नामकी सुन्दर नगरी है, यहीं पर श्री नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकरका जन्म हुआ था। जिस समय भगवान नेमिनाथ दिक्षा लेकर

गिरनार पर्वतपर तपश्चरण करते थे और द्वारकामें श्री कृष्णचन्द्रजी नवमें नारायण राज्य करते थे। ये त्रिखण्डी नारायण थे। इनकी मुख्य पट्टरानी सत्यभामा थी सो सत्यभामाके द्वारा एक वार नारदका अपमान हुआ, इस पर नारदने क्रोधवश इसे दण्ड देनेके अभिप्रायसे रुक्मिणि नामकी एक राजकन्यासे नारायणका विवाह कराकर सत्यभामाके सिरपर सौतका वास करा दिया। निःसन्देह सौतका स्त्रियोंको वहुत बडा दुःख होता है। एक समय जब भगवान नेमिनाथको केवलज्ञान प्रगट होगया तो श्रीकृष्ण रानियो और पुरजनो सहित वदनाको गये और वंदना करके धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर रुक्मिणि नामकी रानीके भवान्तर पूछे।

तब भगवानने कहा कि मगध देशमें राजग्रही नगर है वहांपर रूप और यौवनके मदसे पूर्ण एक लक्ष्मीमती नामकी ब्राह्मणी रहती थी।

एक दिन एक मुनिराज क्षीण शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त इस नगरमें पधारे। उन्हें देखकर इस ब्राह्मणीने उनकी वहुत निंदा की और दुर्वचन कहकर ऊपर थूक दिया।

मुनि निंदाके कारणसे उसको तिर्यंच आयुका वन्ध होगया और उसी जन्ममें उसको कोढ आदि अनेक व्याधियां भी उत्पन्न हो गईं पश्चात् वह आयुके अन्तमें असन्त कष्टसे मरकर वह भेस हुई। फिर मरकर सूकरी हुई, फिर कुत्ती हुई, फिर धीवरनी हुई। सो मछली मार मारकर आजीविका करती हुई जीवनकाल पूरा करने लगी।

एक दिन वटवृक्ष तले श्रीमुनि ध्यान लगाये तिष्ठे थे कि वह कुरूपा और दुष्ट चित्ता धीवरी जाल लिए हुए वहां आई और मछली पकडनेके लिए जाल नदीमें डाला। यह देखकर श्री गुरुने उसे उस दुष्ट कार्यसे रोका और उसके भवान्तर सुनाकर कहा कि तू पूर्व पापके फलसे ऐसी दुःखी हुई है और अव भी जो पाप करेगी तो तेरी असन्त दुर्गति होगी। इस धीवरीको मुनि द्वारा अपने भवान्तर सुनकर मूर्छा आगई। पश्चात् सचेत हो प्रार्थना करने लगी— हे नाथ ! इस पापसे छूटनेका कोई उपाय हो तो वताइए।

तव श्री गुरुने दया करके उसे सम्यग्दर्शन पूर्वक श्रावकके पाच अणुव्रतो (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य परिग्रहप्रमाण) का उपदेश दिया। अष्ट मूल गुण (पंच उदम्बर और तीन मकारोंका त्याग करना) धारण कराये,

इस प्रकार वह धीवरी श्रावकके व्रत ग्रहण करके आयुके अन्तमें समाधिमरण कर दक्षिण देशमें सुपारा नगरके नंदश्रेष्ठिके यहां नंदा सेठानीके लक्ष्मीमती नामकी कन्या हुई। सो यद्यपि वह कन्या रूपवान थी तथापि अशुभ आचरणोंके कारण सभी उसकी निंदा करते थे।

एक समय उसी नगरके वनमें नंद मुनि पधारे। सब लोग मुनिकी वंदनाको गये। राजा आदि सभी जनोंने स्तुति वंदनाकर धर्मोपदेश सुना। पश्चात् नंद श्रेष्ठिने पूछा—हे प्रभो ! यह मेरी कन्या उत्तम रूपवान होकर भी क्यों अशुभ लक्षणोंसे युक्त है जिससे सभी इसकी निंदा करते है

तब श्री गुरुने कहा कि इसने पूर्व जन्मोंमें मुनिकी निंदा की थी जिससे यह भैंस, सुकरी, कूकरी, धीवरी आदि हुई। धीवरीके भवमें मुनिके उपदेशसे पंचाणुव्रत धारण करके सन्याससे मरी सो तेरे घर पुत्री हुई है। अभी इसके पूर्ण असाता कर्मका बिल्कुल क्षय न होनेसे ही ऐसी अवस्था हुई है सो यदि यह सम्यक्त्वपूर्वक निःशल्य अष्टमी व्रत पाले तो निःसन्देह इस पापसे छूट जावेगी। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है:—

भादों सुदी अष्टमीको चारो प्रकारके आहारोंका त्याग करके श्री जिनालयमें जाकर प्रत्येक पहरमें अभिषेक पूर्वक पूजन करे। त्रिकाल सामायिक और स्वाध्याय करे और रात्रिको जिन भजन करते हुवे जागरण करे। पश्चात् नवमीको अभिषेकपूर्वक पूजन करके अतिथियोंको भोजन कराकर आप पारणा करे। चार प्रकारके संघको औषधि, शास्त्र, अभय और आहारदान देवे। इस प्रकार यह व्रत सोलह वर्ष तक करके उद्यापन करे। सोलह सोलह उपकरण मंदिरोंमें भेंट चढावे, अभिषेक पूर्वक विधान पूजन करे, कमसे कम सोलह श्रावकोंको मिष्टान्न भोजन प्रेमयुक्त हो करावे। दु खित भुक्षितको करुणायुक्त दान देवे और चारो प्रकारके संघमें वात्सल्य भाव प्रकट करे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत पाले। इस प्रकार उस श्रेष्ठि कन्याने विधि सुनकर यह व्रत धारण किया और विधियुक्त पालन भी किया, श्रावकके बारह व्रत अंगीकार किये तथा सम्यग्दर्शन जो कि सब व्रतों और धर्मोंका मूल है, धारण किया। व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन किया और अंत समयमें शीलश्री आर्यिकाके उपदेशसे चार प्रकारके आहारोंको त्याग, तथा आर्त रौद्र भावोंको छोडकर समाधि मरण किया सो सोलहवें स्वर्गमें देवी हुई। वहांपर पचपन पल्य (५५) तक नानाप्रकारके सुख

भोगे और आयु पूर्णकर वहांसे चयी सो यह भीष्म राजाके यहां रुक्मिणि नामकी कन्या हुई है। अब अनुक्रमसे स्त्री लिंग छेदकर परम पदको प्राप्त करेगी।

इस प्रकार रानी रुक्मिणि अपने भवांतर सुनकर संसार देह भोगोंमे विरक्त हो, सहर्ष राजमतीके निकट गई और दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगी। सो वह अंत समय सन्यास मरण कर स्वर्गमें देव हुई वहांसे आकर मनुष्य भव ले मोक्ष जावेगी। इस प्रकार रुक्मिणिने व्रतके फलसे अपने पूर्व भवोंके समस्त पापोंको नाशकर उत्तम पद प्राप्त किया और भी जो भव्य जीव श्रद्धा सहित व्रत पालेंगे, वे इसी प्रकार उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त करेंगे।

निसल्याष्टमी व्रत थकी, लक्ष्मीमति त्रियसार। सकल पापको नाशकर, पायो सुख अविकार ॥

<—)⊙(—>

सुगंधदशमी व्रत कथा।

वीतरागके पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर वान। कथा सुगन्ध दशमी तनी, कहूं परम सुख दान ॥

जम्बूद्वीपके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें शिव मंदिर नामका एक नगर है। वहांका राजा प्रियंकर और रानी मनोरमा थी सो अपने धन यौवन आदिके ऐश्वर्यमें मदोन्मत्त हुए जीवनके दिन पूरे करते थे। धर्म किसे कहते थे यह उन्हें मालूम ही न था।

एक समय सुगुप्त नामके मुनिराज कृश शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त वस्तीमें आए सो उन्हें देखकर रानीने अत्यन्त घृणा पूर्वक उनकी निंदा की और पानकी पीक मुनिपर थूक दी। सो मुनि तो अंतराय होनेके कारण विना ही आहार लिए पीछे वनमें चले गए और कर्मोंकी विचित्रतापर विचारकर समभाव धारणकर ध्यानमें निमग्न हो गए।

परंतु थोडे दिन पश्चात् रानी मरकर गधी हुई, फिर मरकर सुकरी हुई, फिर कूकरी हुई, फिर वहांसे मरकर मगध देशके वसंततिलक नगरमें विजयसेन राजाकी रानी चित्रलेखाके दुर्गंधा नामकी कन्या हुई। सो इसके शरीरमें असह्य दुर्गंध निकला करती थी।

एक समय राजा अपनी सभामें बैठा था कि वनपालने आकर समाचार दिया कि हे राजन्! आपके नगरके वनमें सागरसेन नामके मुनिराज चतुर्विधि संघ सहित पधारे हैं। यह समाचार सुनकर राजा प्रजा सहित वंदनाको गया और भक्ति पूर्वक नत मस्तक हो राजाने स्तुति वंदना की। पश्चात् मुनि तथा श्रावकके धर्मोंका उपदेश सुनकर सबने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। किसीने केवल सम्यक्त्व ही अंगीकार किया। इस प्रकार उपदेश सुननेके अनन्तर राजाने नम्रतापूर्वक पूछा—हे नाथ! यह मेरी कन्या दुर्गंधा किस पापके उदयमें ऐसी हुई है सो कृपा कर कहिये? तब श्री गुरुने उसके पूर्व भवोंका समस्त वृत्तान्त मुनिकी निंदादिका कह सुनाया जिसको सुनकर राजा और उस कन्या सभीको पश्चात्ताप हुआ। निदान राजाने पूछा-प्रभो! इस पापसे छूटनेका कौनसा उपाय है? तब श्री गुरुने कहा:—

समस्त धर्मोंका मूल सम्यग्दर्शन है सो अर्हंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनभाषित धर्ममें श्रद्धा करके उनके सिवाय अन्य रागी द्वेषी देव, भेषीगुरु और हिंसामय धर्मको परित्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण इन पांच व्रतोंको अङ्गीकार करे और सुगन्ध दशमीका व्रत पालन करे जिससे अशुभ कर्मका क्षय होवे। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी दशमीके दिन चारों प्रकारके आहारको त्यागकर समस्त गृहारम्भका त्याग करे और परिग्रहका भी प्रमाण कर जिनालयमें जाकर श्री जिनेन्द्रकी भाव सहित अभिषेक पूर्वक पूजा करे। सामायिक स्वाध्याय करे। धर्म कथाके सिवाय अन्य विकथाओंका त्याग करे। रात्रिमें भजन पूर्वक जागरण करे। पश्चात् दूसरे दिन चौवीस तीर्थंकरोंकी अभिषेक पूर्वक पूजा करके अतिथियों (मुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करे। चारों प्रकारका दान देवे। इस प्रकार दश वर्ष तक यह व्रत पालनकर पश्चात् उद्यापन करे।

अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दश दश उपकरण जिन मंदिरोंमें भेट देवे और दश दश प्रकारके श्रीफल आदि फल दश घर श्रावकोंको बांटे, यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करे।

उत्तम व्रत उपवास करनेसे, मध्यम कांजी आहार और जघन्य एकासन करनेसे होता है।

इस प्रकार राजा प्रजा सबने व्रतकी विधि सुनकर अनुमोदना की और स्वस्थानको गये। दुर्गंधा कन्याने मन वचन कायसे सम्यक्त्व पूर्वक व्रतको पालन किया। एक समय दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ भगवानके कल्याणकके समय,

देव तथा इन्द्रोंका आगमन देखकर उस दुर्गंधा कन्याने निदान किया कि मेरा जन्म स्वर्गमें होवे सो निदानके प्रभावसे वह राजकन्या स्वर्गमें अप्सरा हुई और उसका पिता राजा मरकर दशवें स्वर्गमें देव हुआ। यह दुर्गंधा राजकन्या अप्सराके भवसे आकर मगध देशके पृथ्वीतिलक नगरमें राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनावती नामकी कन्या हुई, सो अत्यन्त रूपवान और सुगंधित शरीर हुई। और कौशाम्बी नगरीके राजा अरिदमनके पुत्र पुरुषोत्तमके साथ इस मदनावतीका व्याह हुआ। इस प्रकार ये दम्पति सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक समय वनमें सुगुप्ताचार्य नामके आचार्य संघ सहित आये। सो वह राजकुमार पुरुषोत्तम अपनी स्त्री सहित वंदनाको गया तथा और भी नगरके लोग वंदनाको गये सो स्तुति नमस्कार आदि करनेके अनन्तर श्री गुरुके मुखसे जीवादि तत्वोंका उपदेश सुना। पश्चात् पुरुषोत्तमने पूछा, हे स्वामी! मेरी यह मदनावती स्त्री किस कारणसे ऐसी रूपवान और अति सुगंधित शरीरी है? तब श्री गुरुने मदनावतीके पूर्व भवान्तर कहे और सुगंध दशमीके व्रतका माहात्म्य बताया सो पुरुषोत्तम और मदनावती दोनों भवान्तरकी कथा सुनकर संसार देह भोगोंसे विरक्त हो, दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे। इस प्रकार तपश्चरणके प्रभावसे मदनावती स्त्री लिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहां बाईस सागर सुखसे आयु पूर्ण करके अंत समय चयकर मगध देशके वसुंधरा नगरीमें मकरकेतु राजाके यहां देवी पट्टरानीके कनककेतु नामका सुन्दर गुणवान पुत्र हुआ। पिताके दीक्षा ले जाने पर कितेक काल राज्य करके वह भी अपने पुत्र मकरध्वजको राज्य दे दीक्षा लेकर तपश्चरण करने और देश विदेशोंमें विहार करके अनेक भव्य जीवोंको धर्मके मार्गमें लगाने लगे। इस प्रकार कितनेक कालमें कनककेतु मुनिनाथको केवलज्ञान हुआ और बहुत कालतक उपदेशरूपी अमृतकी वृष्टि करके शेष अघाति कर्मोंको नाश कर परम पद मोक्षको प्राप्त हुए। इस प्रकार सुगंध दशमीका व्रत पालकर दुर्गंधा भी अनुक्रमसे मोक्षको प्राप्त हुई तो और भव्यजीव यदि व्रत पालें तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको पावें।

सुगंध दशमी व्रत कियो, दुर्गंधाने सार। सुरनरके सुख भोगके, अनुक्रम भई भवपार ॥

जिनरात्रि व्रत कथा।

वन्दू ऋषभ जिनेन्द्र पद, माथ नाय हित हेत। कथा कहू जिनरात्री व्रत, अजर अमर पद देत॥

जब तीसरे कालका अंत आया, तब क्रमसे कर्मभूमि प्रगट हुई और कल्पवृक्ष भी मंद पड गये, ऐसे समयमें भोग भूमिके भोले जीव भूख प्यास आदि अनेक प्रकारके दुखोंसे पीडित होने लगे। तब कर्मभूमिकी रीतियें बतानेवाले १४ कुलकर (मनु) उत्पन्न हुए। उन्हींमें से १४ वें मनु श्री नाभिराजा हुए। नाभिराजाके मरुदेवी नाम शुभ लक्षणा रानी थी! इनके पूर्व पुण्योदयसे तीर्थंकर पदधारी पुत्र ऋषभनाथका जन्म हुआ। ये ऋषभनाथ प्रथम तीर्थंकर थे, इसीसे इन्हें आदिनाथ भी कहते हैं।

आदिनाथने नन्दा सुनन्दा नामकी दो स्त्रियोंसे व्याह किया और उनसे भरत, बाहुबलि आदि १०० पुत्र तथा ब्राह्मी और सुन्दरी दो कन्याए हुई। सो कन्याएं कुमार कालहीमें दीक्षा लेकर तप करने लगीं। इस प्रकार ऋषभदेवने बहुत काल तक राज्य किया। जब आयुका केवल चौरासीवा भाग अर्थात् १ लाख पूर्व शेष रह गया, तब इन्द्रने प्रभुको वैराग्यका निमित्त लगाया अर्थात् एक नीलाजना नामकी अप्सरा जिसकी आयु अल्प समय (कुछ मिनटो ही) की रह गई थी, प्रभुके सन्मुख नृत्य करनेको भेज दी। सो नृत्य करते करते वह अप्सरा वहांसे विलय होगई और उसी क्षण, उसी पलमें दूसरी वैसी ही अप्सरा आकर नृत्य करने लगी। इस बातको सिवाय प्रभुके और सभाजन कोई भी जान न सके, परन्तु प्रभु तो तीन ज्ञान संयुक्त थे सो तुरन्त ही उन्होंने जान लिया।

आप संसारको क्षणभगुर जानकर द्वादशानुप्रेक्षाओंका चिंतवन करने लगे इसी समय लौकांतिक देव आए, और प्रभुके वैराग्य भावोंकी सराहना करके उन्हें वैराग्यमें स्तुति पूर्वक दृढ करके चले गये। पश्चात इन्द्रादि देवों व नरेन्द्रोंने उत्साहपूर्वक तप कल्याणकका समारोह किया। भगवान् ऋषभनाथने सिद्धोंको नमस्कार करके स्वयं दिगम्बर दीक्षा ली और भक्तिवश उनके संग ४००० राजाओंने भी देखादेखी दीक्षा ले ली। सो दुर्द्धर तप करनेको असमर्थ होकर नाना प्रकारके भेष धारण कर ३६३ पाखण्डमत चला दिए। इन दीक्षा लेनेवालोंमें भरतजीका पुत्र मारीच भी था। सो जब भगवानको केवलज्ञान हुआ और भरतजी उस समय वंदनाको गए और वंदना करके मनुष्योंके कोठे (सभा) में

बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगे। धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर भरतजीने पूछा-हे ऋषिनाथ! हमारे वंशमें और भी कोई आपके जेसा धर्मतीर्थका प्रवर्तक अथवा चक्रवर्ती होगा? तब प्रभुने कहा कि मारीचका जीव नारायण होकर फिर तीर्थंकर भी होगा। मारीच समवशरणमें ही बैठा था, सो यह बात सुनकर हर्षोन्मत्त हो दीक्षा त्याग करके वह अनेक प्रकारके पाप कर्मोंमें प्रवृत्त होगया, और पचाग्नि तप कर अन्त समय प्राण छोडकर पांचवें स्वर्गमें देव हुआ। वहासे मिथ्यात्व अवस्थामें प्राण छोडकर अनेक त्रस स्थावर योनियोंम जन्म मरण करनेके अनन्तर राज्यगृही नगरीके राजा विश्वभूतिकी रानी जयतिके विश्वनंदि नामका पुत्र हुआ। एक समय विश्वभूति राजा कोई निमित्त पाकर वैराग्यको प्राप्त हो गये और अपने पुत्रको बालक जानकर अपने लघु भ्राता विशाखभूतिको राज्य और अपने पुत्र विश्वनदिको युवराज पद देकर आप दीक्षा लेकर तप करने लगे।

युवराज विश्वनंदिने अपने मनोरजनार्थ एक बाग तैयार कराया, सो नित्य प्रति अपना चित्त रंजन किया करता था।

वर्तमान राजा विशाखनदिने बाग देखकर अत्यन्त आश्चर्य किया। और इससे उसको विश्वनदिपरसे द्वेष बुद्धि उत्पन्न हो गई। इसलिए उसने विश्वनदिको किसी प्रकार देशसे निकाल देनेका दृढ निश्चय कर लिया और इसलिये उसने युवराजको आज्ञा दी, कि तुम अमुक अमुक देश साधन करनेके लिए जाओ। युवराज विश्वनंदि राजाज्ञासे देश साधनेको गया, और उनकी क्रीडा करनेका जो बाग था सो राजाने स्वपुत्रको दे दिया। कितनेक काल बाद जब युवराज देश वशकर लौटा तो अपनी क्रीडा करनेका बाग अपने काकाके पुत्रके हाथमें गया जानकर कुपित हो उसे मारनेके लिए चला। सो वह विशाखभूतिका पुत्र भयके मारे वृक्षपर चढ़ गया। विश्वनदिने उस वृक्षको ही उखाड दिया। यह देखकर वह राजपुत्र युवराजके चरणोंमें मस्तक झुकाकर क्षमा मागने लगा। युवराजने अपने भाईको क्षमा करके उठाया, और आप संसारको असार जानकर काका सहित दीक्षा ले गया। काका विशाखभूति बारह प्रकार दुर्द्धर तप करके दशवें स्वर्गमें देव हुआ।

युवराज विश्वनदि अनेक प्रकारके दुर्द्धर तप करते हुए मासोपवासके अनन्तर भिक्षाके अर्थ नगरमें पधारे, सो किसी पशुने उन्हें अपने सींगोमे प्रहारकर भूमिपर गिरा दिया। उस समय राजा विशाखनंदि अपने महलोंमें बैठा यह

सब बात देख रहा था, सो अविचारी मुनिका उपहास करने कहने लगा कि यह सब बल अब कहां गया ? इत्यादि ? मुनिराज विशाखनंदि राजाके वचन सुनकर और अन्तराय जानके वनमें चले गये और उन्होंने निदान करके आयुके अन्तमें प्राण छोडकर दशवें स्वर्गमें देव पद प्राप्त किया। कुछ काल बाद विशाखनंदि भी दीक्षा ले, तप कर दशवें स्वर्गमें देव हुआ। सो ये दोनों देव देवोचित सुख भोगने लगे और अन्त समय वहांसे चयकर विशाखभूतिका जीव, सोरम्य देश पोदनपुर नगरीके प्रजापति राजाकी रानी जयावतीके बलभद्र पदधारी पुत्र हुआ और उसी राजाकी मृगावती रानीके गर्भसे विश्वनंदिका जीव दशवें स्वर्गसे चयकर त्रिपृष्ट नामका नारायण पदधारी पुत्र हुआ। सो रथनूपुरका राजा ज्वलनजटीकी प्रभावती नामकी कन्याके साथ नारायणका व्याह हुआ। सो विशाखनंदिका जीव जो विजयार्द्ध गिरिका राजा अश्वग्रीव प्रतिनारायण हुआ था. उक्त व्याहका समाचार सुनकर बहुत कुपित हुआ और बोला कि क्या ज्वलनजटीकी कन्या त्रिपृष्ट जैसा रक व्याह सकता है ? चलो, इस दुष्टको उसकी इस धृष्टताका फल चखावें, यह विचारकर तुरन्त ही ससैन्य त्रिपृष्ट राजा (जो कि होनहार नारायण थे) पर जा चढा और घोर संग्राम आरम्भ कर दिया। जिसमें पृथ्वीपर हाहाकार मच गया परन्तु अन्यायका फल कभी अच्छा नहीं हुआ न होगा। अन्तमें त्रिपृष्ट नारायणकी ही विजय हुई और अश्वग्रीव अपने कियेका फल पाकर विशेष दुःख भोगनेको नर्कमें चला गया। क्या कोई किसीकी मांग या विवाहित स्त्रीको ले सकता या लेकर सुखी हो सकता है ? देखो, परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे अश्वग्रीव प्रतिहर त्रिपृष्ट द्वारा हता गया और त्रिपृष्टको नारायण पदका उदय हुआ सो सम्पूर्ण तीन खण्ड, विना ही प्रयास त्रिपृष्टके हाथ आगये। यथार्थ है पुण्यसे क्या नहीं हो सकता है। इस प्रकार कितनेक कालतक त्रिपृष्ट नारायणने संसारके विविध प्रकार सुख भोगे, और अन्त समय रौद्रध्यानसे मरणकर सातवें नर्क गया। वहां ३३ सागरतक घोर दुख भोगकर निकला सो सिंह हुआ। वहां अनेक जीवोंको मार मार खाये जिससे घोर हिंसाके कारण मर कर पुनः प्रथम नरकमें गया। वहांसे निकलकर पुनः सिंह हुआ। सो चारण मुनि अमितकीर्तिने उसे धर्मोपदेश देकर सम्बोधन किया। उस समय मुनिकी शांतमुद्रा और सरल उपदेशका उस सिंह पर बहुत बडा प्रभाव पडा। उसने हिंसा त्याग दी और अनशन व्रत धारण करके फाल्गुन वदी चतुर्दशीको प्राण त्यागकर प्रथम स्वर्गमें हरिध्वज नामका देव हुआ। वह देव पुण्यके प्रभावसे अनेक प्रकारके सुख भोगता

और निरंतर धर्म सेवन करता हुआ वहांसे चयकर धातकीखण्ड द्वीपके सुमेरुगिरिकी पूर्व दिशामें सीता नदीके किनारे उत्तर दिशामें जो कक्षावती देश है सो उस देशकी हेमप्रभ नगरीमें कनकप्रभु नाम राजाकी कनकमाला पट्टरानीके गर्भसे हेमध्वज नामका पुत्र हुआ। यह हेमध्वज राजा एक समय अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना करनेको गया था सो वहां एक अकृत्रिम जिन चैत्यालयमें श्री सुव्रत नामके मुनिराजका दर्शन होगया। यह उनकी वंदना स्तुतिकर धर्म श्रवण करनेके अनन्तर अपने भवान्तर पूछने लगा—

तब श्री गुरुने कहा कि तू इससे तीसरे भवमें सिंह था सो मुनिके उपदेशसे हिंसा त्याग कर जिनरात्रि व्रत धारण किया और अनशन तपके प्रभावसे प्रथम स्वर्गमें देव हुआ। अब वहांसे चयकर तू हेमध्वज नामका राजा हुआ है। यह सुनकर राजाने व्रतकी विधि पूछी। तब श्री गुरुने बताया कि फागुन वदी १४ (गुजराती माह वदी १४) को उपवास करे, श्री जिनालयमें जावे और पंचामृत अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्यसे भगवानकी त्रिकाल पूजन सामायिक और स्वाध्याय करे। रात्रिको भी धर्मध्यान पूर्वक भजन व जागरण करे।

दूसरे दिन अतिथिको भोजन कराकर आप भोजन करे, सुपात्रोंको चार प्रकारका दान देवे। इस प्रकार १४ वर्ष यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करे।

अतीत, अनागत और वर्तमान चौवीसीका विधान (पाठ) रचावे। चौदह महान् ग्रन्थ (शास्त्र) मंदिरोंमें पधरावे तथा अन्य उपकरण सब चौदह २ मंदिरोंमें भेंट करे। कमसे कम चौदह श्रावक और चौदह श्राविकाओंको श्रद्धा व भक्ति पूर्वक सादर मिष्टान्नादि भोजन करावे। नवीन वस्त्र पहिरावे। कुमकुमका तिलक कर उनका भले प्रकार सन्मान ...। चौदह बिजौरा देवे, चतुर्विधि दानशालाएं खोले इत्यादि उत्सव करे और जो शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। इस प्रकार राजा हेमध्वजने व्रतकी विधि सुनकर भक्ति भावसे व्रत धारण किया और उसे यथाविधि पालन भी किया। फिर अन्त समयमें जिन दीक्षा लेकर बारह प्रकारके तप करते हुए आयु पूर्ण कर आठवें स्वर्गमें देव हुआ।

वहांसे चयकर अवन्ती देशकी उज्जैन नगरीमें वज्रसेन राजाकी सुशीला रानीके हरिषेण नामका पुत्र हुआ जो योग्य वय होनेपर पंचाणुव्रत पालन करते हुए कितनेक काल तक राज्य किया। पश्चात् दीक्षा ले उग्र तपकर सन्यास

पूर्वक प्राण त्यागकर दशवें स्वर्गमें देव हुआ। वहासे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह कक्षावती देशकी क्षेमपुरी नगरीमें धनञ्जय राजाकी प्रभावती पट्टरानीमे प्रियमित्र नामका पुत्र हुआ। सो पुण्य फलसे चक्रवर्ति पदको प्राप्त हो षट् खण्डका राज्य कर अनेक सुख भोगे। पुनः जिनरात्रि व्रत किया और अन्त समय क्षेमंकर स्वामीके निकट दीक्षा लेकर दुर्द्धर तप किया सो अन्तमें आयु पूर्णकर बारहवें सहस्रार स्वर्गमे सूर्यप्रभु देव हुआ। वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके श्वेत क्षत्रपुर नगरके राजा नदिवर्द्धनकी वीरमती रानीके श्री नंदन नामका पुत्र हुआ सो प्रियंकरा नाम राजकन्यासे ब्याह कर सानन्द रहने लगा। पुनः जिनरात्रि व्रत किया ओर कितेक काल राज्य कर अन्तमें पुत्रको राज्य देकर आपने महाव्रत धारण किया, और सोलह कारण भावना भाई, जिससे तीर्थंकर नाम कर्म प्रकृतिका बन्धकर प्राण त्याग सोलहवें पुष्पोत्तर विमानमें देव हुआ। फिर वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके आर्यखण्ड मगध देशकी कुन्डलपुर नगरीके राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलादेवीके पंचकल्याणकोंके धारी श्री वर्द्धमान नामके चौवीसवें तीर्थंकर हुए। प्रभुका जन्म चैत्र सुदी त्रयोदशीको हुआ था। आपने कुमार अवस्थामें ही मार्गशीर्ष वदी दशमीको दीक्षा धारण कर ली और बारह वर्षके घोर तपश्चरण करनेके अनतर वैशाख सुदी १० को केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशोंमें विहारकर धर्मोपदेश दे भव्य जीवोंको कल्याणके मार्गमें लगाया। श्री वीरप्रभुने ३० वर्ष तक भेद भाव रहित समस्त नर पशु और देवों अर्थात् जीव मात्रको कल्याणका उपदेश किया। पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावास्याको प्रातःकाल पावापुरीके वनसे शेष अघाति कर्मोंको भी नाश करके परम पद (मोक्षको) प्राप्त किया। इस प्रकार इस व्रतके प्रभावसे सिंह भी अनेक उत्तम उत्तम भव लेकर अंतिम तीर्थंकर हो लोकपूज्य सिद्धपदको प्राप्त हुआ सो यदि अन्य भव्य जीव भाव सहित पालन करें तो अवश्य ही उत्तम फलको प्राप्त होवें।

पालन कर जिन रात्रि व्रत, सिंह महा दुठ जीव। अनुक्रम तीर्थंकर भयो पायो मोक्ष सदीव ॥

जिनगुण सम्पत्ति व्रत कथा।

वन्दू आदि जिनेन्द्र पद, मन वच शीश नवाय। जिनगुण सम्पति व्रत कथा, कहूं भव्य सुखदाय॥

धातकीखंड द्वीपके पूर्व मेरु सम्बन्धी अपर विदेह क्षेत्रमें गाभिल देश और पाटलीपुर नामका नगर है। वहां नागदत्त नामका एक सेठ और उसकी सुमति नामकी सेठानी रहती थी सो निर्धन होनेके कारण अत्यन्त पीड़ित चित्त रहते और वनसे लकड़ीका भारा लाकर बेचते। इस प्रकार उदर-पूर्ति करते थे। एक दिन वह सुमति सेठानी भूख प्यासकी वेदनासे व्याकुल होकर एक वृक्षके नीचे थक कर बैठी थी—

कि इतने ही में क्या देखती है? कि बहुतसे नर नारी अष्ट प्रकारकी पूजनकी द्रव्य लिये हुवे बड़े उत्साहसे हर्ष सहित कहीं जा रहे हैं। तब सुमतिने साश्चर्य उन आगन्तुकोंसे पूछा, क्यों भाई आप लोग कहां जा रहे हैं और यह काहेका उत्सव है? तब उत्तर मिला कि अवर तिलक पर्वतपर पिहताश्रव नामके केवली भगवान पधारे हैं। हम लोग सब उन्हींकी वंदनाके लिए जा रहे हैं और यह अष्ट प्रकारकी द्रव्य पूजार्थ लिए जाते है।

सुमति सेठानी यह शुभ समाचार सुनकर सहर्ष सब लोगोंके साथ ही साथ प्रभुकी वंदनाके निमित्त चल दी।

इस प्रकार जब सब लोग पिहताश्रव स्वामीके निकट पहुंचे तो मन वचन कायसे भक्ति पूर्वक भगवानकी वंदना पूजा की और फिर एकाग्र चित्तकर धर्मोपदेश सुननेके लिये बैठ गये।

स्वामीने देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन गृहस्थके षट कर्मोंका उपदेश किया। पश्चात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (स्वदारसन्तोष) और परिग्रह प्रमाण इन पंचाणुव्रतों तथा इनके रक्षक ४ शिक्षाव्रत और ३ गुणव्रत इन सातशीलों ऐसे बारह व्रतोंका उपदेश किया और सबसे प्रथम कर्तव्य सम्यग्दर्शनका स्वरूप समझाया।

इस प्रकार उपदेश सुनकर नरनारी अपने २ स्थानको पीछे लौटे। तब सुमति सेठानी जो अत्यन्त दरिद्रतासे पीड़ित थी। अवसर पाकर श्री भगवानसे अपने दुःखकी वार्ता कहने लगी। हे स्वामी! हे दीनबन्धु, दयासागर भगवन्! मैं अबला दरिद्रतासे पीड़ित होकर नितान्त व्याकुल हुई कष्ट पा रही हूं। कौन कारणसे सम्पत्ति (लक्ष्मी) मुझसे दूर रहती है और वह कैसे मुझे मिले, कि जिससे मेरा दुःख दूर होकर मेरी प्रवृत्ति भी दान पूजादि रूप हो। किसी कविने

ठीक ही कहा है कि " भूखे पेट भक्ति नहीं होय, धर्माधर्म न सूझे कोय।" इसी कहावतके अनुसार जब सब लोग धर्मोपदेश सुन रहे थे, तब वह दरिद्रा सुमति सेठानी अपने दारिद्र रूपी तत्वके विचारमें ही निमग्न थी, जो कि अवसर मिलते ही झटसे कह सुनाया।

स्वामीने जिनकी दृष्टिमें राजा और रंक समान हैं, उस सेठानीके चित्तको शीतल और प्रसन्न करनेवाले शब्दोंमें इस प्रकार समझाया।

ऐ बेटी सुमति! सुन! पलासकूट नाम नगरमें देविलह नाम ग्रामपति रहता था। उसकी भार्या सुमति और पुत्री धनश्री रूप योवन सपन्ना थी। एक समय धनश्री पाच सात सखियोंको लेकर वनक्रीडाके लिए नगरके उद्यानमें गई जहांपर एक वृक्षके नीचे समाधिगुप्त नामके मुनिराज ध्यान कर रहे थे। सो यह मदोन्मत्त धनश्री मुनिराजको देखकर निन्दायुक्त वचन कहने लगी और घृणाकर श्री मुनिराजके ऊपर कुत्ता छोड दिये, इससे मुनिराजको बडा उपसर्ग हुआ, परन्तु वे धीरवीर जिनगुरु अपने ध्यानसे किंचितमात्र भी च्युत न हुए।

परन्तु इस महापापके कारण वह धनश्री मरकर सिंहनी हुई और सिंहनी मरकर तू धनहीन दरिद्रा नारी, उत्पन्न हुई है। सो जो कोई मूढ नरनारी श्रीगुरुको उपसर्ग करते हैं वे ऐसी ही तथा इससे भी नीच गतिको प्राप्त होते हैं।

सुमति सेठानी अपने पूर्व भवान्तर सुनकर बहुत दुःखी हुई और पश्चाताप करके रोने लगी। पश्चात कुछ धैर्य धर कर हाथ जोडके पूछने लगी–हे स्वामी! मेरा यह महापाप किस प्रकार छूटेगा?

तब भगवानने कहा कि जो तू सम्यग्दर्शनपूर्वक जिनगुन सम्पत्ति व्रत पालन करे तो तेरा दुःख दूर होकर मनवाञ्छित कार्य सिद्ध होगा।

व्रतकी विधि इस प्रकार है कि प्रथम ही सोलहकारण भावनाएं जो तीर्थंकर प्रकृतिके आश्रवका कारण हैं, उनके १६, पच परमेष्टीके पांच, अष्ट प्रातिहार्यके ८ और ३४ अतिशयोंके ३४ इस प्रकार कुल ६३ उपवास वा प्रोषध करे। और इन उपवासके दिनोंमें समस्त गृहारम्भको त्याग कर श्री जिनेन्द्र भगवानका अभिषेक और पूजन विधान करे, दिनमें तीन बार सामायिक वा स्वाध्याय करे और उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। उद्यापनकी विधि निम्न प्रकार है:–

आम, जाम, केला, नारंगी, विजौरा, श्रीफल, अखरोट, खारक, बादाम, द्राक्ष इत्यादि प्रत्येक प्रकारके ६३ त्रेशठ फल और भांति भांतिके उत्तम पक्वान्नो सहित अष्ट द्रव्यसे भगवानका महाभिषेक पूर्वक पूजन करे और जिनालयमें चन्दोवा, चमर, छत्र, झालर घंटादि उपकरण भेंट करे तथा त्रेशठ ६३ ग्रन्थ लिखाकर श्रावक श्राविकाओंमें ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेके लिये बांटे व जिनालयके सरस्वती भंडारोंमें ग्रन्थ पधरावे। खूब उत्सव करे, अतिथियोंको भोजन देवे व दीन दुःखीका यथासंभव दुःख दूर करे इत्यादि।

सुमति सेठानी इस प्रकार व्रतकी विधि सुनकर घर आई और श्रद्धा सहित व्रत पालन करके शक्ति अनुसार उद्यापन भी किया सो आयुके अंतमें सन्यास मरण करके दूसरे स्वर्गमें ललितांग देवकी पटरानी देवी हुई। पुण्यके प्रभावसे वह स्वयंप्रभा देवी नाना प्रकारके सुखोंको भोगती हुई। पश्चात आयु पूर्ण कर वहांसे चयकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकनी नगरीमें यज्ञदत्त चक्रवर्तिके लक्ष्मीमती नामकी रानीके गर्भसे श्रीमती नामकी पुत्री हुई सो वज्रजंघ राजाके साथ व्याही गई। एक दिन ये दम्पति वनक्रीडाको गये थे सो वहां सर्प सरोवरके तटपर आये हुवे चारण मुनिको आहारदान दिया और मुनिदानके प्रभावसे ये दम्पति भोगभूमिमें उत्पन्न हुए। फिर वहांसे चयकर श्रीमतीके जीवने जम्बूद्वीपमें अवतार लेकर आर्यिकाके व्रत धारण किये और सन्यास पूर्वक मरण कर स्त्रीलिंग छेद दूसरे स्वर्गमें देव हुआ। फिर वहांसे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह वत्सकावती देशकी सुसीमा नगरीमें सुवुधि नाम राजाकी मनोरमा रानीके केशव नाम पुत्र हुआ सो उसने बहुत कालतक अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्यसुख न्याय नीतिपूर्वक भोगे। पश्चात कारण पाय वैराग्यको प्राप्त हुआ और सीमंधर स्वामीके निकट जिन दीक्षा धारण करके दुर्द्धर तपश्चरण किया। सो तपके प्रभावसे सन्यास मरणकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ।

वहांसे बावीस सागरकी आयु सुखसे पूर्ण करके चया सो जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकनी नगरीमें कुवेरदत्त सेठकी अनन्तमती सेठानीके धनदेव नामका पुत्र (चक्रवर्तीका भण्डारी) हुआ।

एक दिन वह धनदेव चक्रवर्तीके साथ मुनिराजकी वंदनाको गया सो स्वामीका उपदेश सुनकर उसने वैराग्यको प्राप्त होकर जिन दीक्षा धारण की और तप करके सन्यास मरण कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ।

फिर वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशकी हस्तिनागपुर नगरीमें श्रेयांस नामका राजा हुआ, सो कितनेक काल राज्यसुख भोगे। पश्चात् श्री ऋषभदेव भगवानको आहारदान दिया, जिसके कारण दानियोंमें प्रसिद्ध प्रथम दानवीर कहलाया, जिसकी कथा आजतक प्रख्यात है और लोग उस दानके दिन (वैसाख सुदी ३) को अक्षय तृतीया व आखातीज कहते और उत्सव मनाते हैं, क्योंकि सबसे प्रथम दानकी प्रथा इन्हींके द्वारा प्रचलित हुई है।

पश्चात् वे प्रसिद्ध दानी राजा श्रेयांस भगवान ऋषभदेवके मुखसे धर्मोपदेश सुनकर जिन दीक्षा लेकर तप करने लगे और आपने शुक्लध्यानके प्रभावसे केवलज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार सुमति नामकी दरिद्रा सेठानीने जिनगुण सम्पत्ति व्रत सम्यग्दर्शन सहित पालनकर अनुक्रमसे मोक्षपद प्राप्त किया तो और भव्य जीव यदि पालें तो क्यो नहीं उत्तम फल पावेंगे? अवश्य ही पावेंगे।

जिनगुण सम्पति व्रत करो, सुमति वणिक वरनार। नर सुरके सुख भोगकर, फेर हुई भवपार॥

मेघमाला व्रत कथा।

महावीर पद प्रणमि कर, गौतम गुरु सिर नाय। कथा मेघमाला तनी, कहूं सबहिं सुखदाय॥

वत्स देश कौशाम्बीपुरीमें जब राजा भूपाल राज्य करते थे तब वहांपर एक वत्सराज नामका श्रेष्ठी (सेठ) और उसकी सेठानी पद्मश्री नामकी रहती थी। सो पूर्व कृत अशुभ कर्मके उदयसे उस सेठके घरमें दरिद्रताका वास रहा करता था। उसपर भी उसके सोलह (१६) पुत्र और बारह (१२) कन्याएं थी।

गरीवीकी अवस्थामें इतने बालबच्चोंका लालन पालन करना और गृहस्थीका खर्च चलाना कैसा कठिन हो जाता है, इसका अनुभव उन्हींको होता है, जिन्हें कभी ऐसा प्रसङ्ग आया हो या जिन्होंने अपने आसपास रहनेवाले दीन दुःखियोंकी ओर कभी अपनी दृष्टि डाली हो। परम स्नेह करनेवाले माता पिता ही ऐसे समयमें अपने प्यारे बालकोंको अनुचित और कठोर शब्दोंमें केवल सम्बोधन ही नहीं करने लगते हैं किन्तु उन्हें बिना मूल्य या मूल्यमें बेच तक देते हैं। प्राणोंसे प्यारी सन्तान कि जिसके लिये संसारके अनेकानेक मनुष्य लालयित रहते हैं और अनेक यंत्र मंत्रादि कराया

करते हैं, हाय ! उस दरिद्रावस्थामें वह भी भाररूप हो पडती है। वत्सराज सेठ निरतर इसी चिंतामें चिंतित रहता। जब वे बालक क्षुधातुर होकर मातासे भोजन मांगते तो माता कठोरतासे कह देती–जाओ मरो, रुदन करो, चाहे भीख मांगो, तुम्हारे लिए मैं कहांसे भोजन दूं ? यहां क्या रखा है जो दे दूं ? सो वे नन्हें २ बालक झिडकी खाकर जब पिताके पास आते, तब वहांसे भी निराशा ही पल्ले पड़ती। हाय ! उस समयका करुणाक्रंदन किसके हृदयको विदीर्ण नहीं कर देता है ?

एक दिन भाग्योदयसे एक चारणऋद्धिधारी मुनि वहां आये। उन्हें देखकर वत्सराज सेठने भक्ति सहित पड़गाहा और घरमें जो रूखा सूखा भोजन शुद्धतासे तैयार किया गया था। सो भक्ति सहित मुनिराजको दिया।

मुनिराज उस भक्तिपूर्वक दिये हुए स्वाद रहित भोजनको लेकर वनकी ओर सिधार गये। तत्पश्चात् सेठ भी भोजन करके जहां श्री मुनिराज पधारे, वहा खोजते खोजते पहुंचा और भक्तिपूर्वक वंदना करके बैठा। श्री गुरुने इसे सम्यक्त्वादि धर्मका उपदेश दिया।

पश्चात सेठने पूछा हे दयानिधि ! मेरे दरिद्रता होनेका कारण क्या है ? और अब यह कैसे दूर हो सकती है ?

तब श्री गुरु बोले ऐ वत्स सुनो ! कौसल देशकी अयोध्या नगरीमें देवदत्त नामके सेठकी देवदत्ता नामकी सेठानी रहती थी। वह धन कण और रूप लावण्य कर संयुक्त तो थी परंतु कृपण होनेके कारण दान धर्ममें धन लगाना तो दूर ही रहे किन्तु वह उल्टा दूसरेका धन हरण करनेको तत्पर रहती थी।

एक दिन कहींसे एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी जो अत्यन्त क्षीण शरीरी था सो भोजनके निमित्त उसके घर आगया। उसे देख सेठानीने अनेक दुर्वचन कहकर निकाल दिया। वह कृपणा कहने लगी अरे जा २ यहांसे निकल यहां तो बच्चे भूखो मर रहे हैं, कह तो दान कहांसे करें। जो चाहे सो यहां ही चला आता है। इतने हीमें उसका स्वामी सेठ भी आगया और उसने भी अपनी स्त्रीकी हांमें हां मिला दी।

निदान कुछेक दिनोंमें वही हुवा–जैसी मनसा वैसी दशा हो गई। अर्थात् उनका सब धन चला गया और वे यथार्थमें भूखो मरने लगे। अति तीव्र पापका फल कभी कभी प्रत्यक्ष भी दीख जाता है।

वे सेठ सेठानी आर्तध्यानसे मरे सो एक ब्राह्मणके घर महिष (भैंस) के पुत्र (पाड़ा-पाड़ी) हुए। सो वहां भी भूख प्यासकी वेदनासे पीड़ित हो पानी पीनेके लिये एक सरोवरमें घुसे थे कि कीच (कांदा) में फस गये और जब तड़फड़ा कर मरणोन्मुख हो रहे थे कि उसी समय किसी दयालु श्रावकने आकर उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया और मिष्ट शब्दोंमें सम्बोधन किया।

सो वे पाडा पाड़ी वहांसे मरकर णमोकार मंत्रके प्रभावसे तुम मनुष्य भवको प्राप्त तो हुवे, परन्तु पूर्व संचित पाप कर्मोंका शेषांश रह जानेसे अब तक दरिद्रताने तुम्हारा पीछा नहीं छोडा है।

ऐ वत्स ! यह दान न देने और यति आदि महात्माओंसे घृणा करनेका फल है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थको सदैव यथाशक्ति दान धर्ममें अवश्य ही प्रवर्तना चाहिये।

अब तुम सत्यार्थ देव अर्हंत, गुरु निर्ग्रन्थ और दयामयी धर्ममें श्रद्धान करो और श्रद्धापूर्वक मेघमाला व्रतको पालन करो तो सब प्रकार इस लोक और परलोक सम्बन्धी सुखोंको प्राप्त होवोगे।

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर आश्विन सुदी प्रतिपदा तक प्रति वर्ष एक २ मास करके पांच वर्षतक किया जाता है अर्थात् भादों सुदी पड़िमासे आसोज सुदी पड़िमा तक (एक मास) श्री जिनालयके आंगण (चौक) में सिंहासनादि स्थापन करे और उस पर श्री जिनबिंब स्थापन करके महाभिषेक और पूजन नित्य प्रति करे, श्वेत वस्त्र पहिरे, श्वेत ही चंदोवा बंधावे, मेघधाराके समान १००८ कलशोंसे महाभिषेक करके पश्चात् पूजा करे। पंच परमेष्ठीका १०८ बार जाप करे, पश्चात् संगीत पूर्वक जागरण भजन इत्यादि करे। भूमिशयन व ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करे। यथाशक्ति चारो प्रकारका दान देवे, हिंसादि पंच पापोंका त्याग करे तथा एक मास पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक (एक भुक्ति) उपवास, बेला, तेला आदि शक्तिप्रमाण करे। निरंतर षट् रसीव्रत पाले अर्थात् नित्य एक रस छोड़कर भोजन करे। इस प्रकार जब पांच वर्ष पूर्ण हो जावें तब शक्ति प्रमाण भाव सहित उद्यापन करे अर्थात् पाच जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा करावे, पांच महान् ग्रन्थ लिखावे, पाच प्रकारका पक्वान्न बनाकर पाच घर श्रावकोंके देवे। पांच २ घंटा, झालर, चदोवा, चौकी, चमर, छत्र, अछार आदि उपकरण देवे। पाच श्रावकों (विद्यार्थियों) को भोजन करावे, सरस्वतीभवन बनावे, पाठशाला चलावे इत्यादि और अनेको प्रभावना बढ़ाने वाले कार्य करे।

इस प्रकार व्रतकी विधि सुनकर सेठ सेठानीने श्रद्धा पूर्वक इस व्रतको पालन किया सो व्रतके प्रभावसे उनका सब दारिद्र्य दूर हो गया और वें स्त्री पुरुष सुखसे काल व्यतीत करते हुए आयुके अंतमें सन्यास पूर्वक मरण कर दूसरे स्वर्गमें देव हुए। फिर वहासे चयकर वे पोदनपुरमें विजयभद्र नामके राजा और विजयावती नामकी रानी हुए सो पूर्व पुण्यके प्रभावसे धन धान्य पुत्र पौत्रादि सम्पत्तिके अधिकारी हुए।

आयुके अंतिम भाग (वृद्धावस्था) में दोनो राजा और रानी अपने पुत्रको राज्यका अधिकार देकर आप जिनेश्वरी दीक्षा ले तप करने लगे, सो तपके प्रभावसे आयु पूर्ण कर राजा तो सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुआ और रानी भी स्त्री लिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई। वहासे चयकर ये दोनो प्राणी मोक्षका पद प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार मेघमाला व्रतके प्रभावसे देवदत्त और देवदत्ता नामक कृपण सेठ और सेठानी भी मोक्षपद पावेंगे सो यदि और नर नारी श्रद्धा सहित व्रत पालें तो अवश्य ही उत्तम फल पावें।

मेघमाला व्रत धारकर, सेठ सिठानी सार। लह्यो स्वर्ग अरु लहेंगे, मोक्ष सुख अधिकार॥

अथ श्री लब्धिविधान व्रत कथा।

प्रथम नमू जिन वीर पद, पुनि गुरु गौतम पाय। लब्धि विधान कथा कहू, शारद होहु सहाय॥

काशी देशमें वाराणसी नामकी नगरीका महा प्रतापी विश्वसेन राजा था। उसकी रानीका नाम विशालनयना था। एक दिन राजाने कौतुकपूर्ण हृदयसे नाटकका खेल करवाया। नाटककार पात्रोंने राजाकी प्रसन्नतार्थ अनेक प्रकार गीत नृत्य, हाव भाव, विभ्रमादि पूर्वक नाटकका खेल खेलना आरंभ कर दिया, सो राजा रानी और सब पुरजन अपने योग्य आसनों पर बैठ कर सहर्ष वह अभिनय देखने लगे।

उन नाटककार पात्रोंके विविध भेष और हाव भावोंमें रानीका चित्त चंचल हो उठा और वह चमरी और रंगी नामकी अपनी दो सखियों सहित घरसे निकल पडी। तथा कुसंगमें पड़कर अपना शील धर्म रूपी भूषण खो बैठी। वह ग्रामो ग्राम भ्रमण करती हुई वेश्या कर्म करने लगी। जीवोंके भाव तथा कर्मोंकी गति विचित्र है। देखो, रानी रनवासके

सुख छोड़ कर गली गलीकी कुत्ती होगई। सत्य है इन नाटकोंसे कितने घर नहीं उजड़े। रानी जैसेकी यह दशा हुई तो अन्य जनोंका कहना ही क्या है।

राजा भी अपनी प्रियतमाके वियोगजनित दुःखको न सह सकनेके कारण पुत्रको राज्य देकर वनमें चला गया और इष्ट वियोग (आर्तध्यान) से मरकर हाथी हुआ, सो वनमें भटकते २ एक समय किसी पुण्य संयोगसे श्री मुनिराजका दर्शन होगया और धर्म-बोध भी मिला, जिससे वह हाथी सम्यक्त्वको प्राप्त करके अणुव्रत पालन करने लगा। और आयुके अंतमें चया, सो पाटलीपुत्र नगरमें महीचन्द्र नामका राजा हुआ।

यह महीचन्द्र राजा एक दिन वन क्रीड़ाको गया था। इसके पुण्योदयसे वहां (उद्यानमें) श्री मुनिराजके दर्शन होगये। तब सविनय साष्टांग नमस्कार करके राजा धर्मश्रवणकी इच्छासे वहां बैठ गया; इतनेमें कानी, कुबड़ी और कोढी ऐसी तीन कन्या अत्यन्त दुःखित हुई वहां आईं। उन्हें देखकर राजा महीचन्द्रको मोह उत्पन्न हुआ, तब राजाने श्री गुरुसे अपने मोह उत्पन्न होनेका कारण पूछा-तब श्री गुरुने इनके भवान्तरका सम्बन्ध कह सुनाया। कि:-हे राजन्! तू अबसे तीसरे भवमें बनारसका राजा विश्वसेन था और रानी तेरी विशालनयना थी, सो नाटकका अभिनय देखते हुए नाटककार पात्रोंके हावभावोंसे चंचलचित्त होकर तेरी रानी अपनी रंगी और चमरी नामकी दो दासियों सहित निकल कर कुपथ गामिनी होगई। सो वे तीनों वेश्या कर्म करती हुईं एक समय किसी राजाके पास कुछ याचनाको जा रही थीं कि, रास्तेमें परम दिगम्बर मुनिराजको देखकर अपने कार्यके साधनमें अपशकुन मानने लगीं और रात्रि समय मुनिराजके पास आकर अपने घृणित स्वभावानुसार हाव भाव दिखाने और मुनिराजके ध्यानमें विघ्न करने लगीं, परंतु जैसे कोई धूल फेंककर सूर्यको मलीन नहीं कर सकता है उसी प्रकारसे वे कुलटाएं श्रीमुनिराजको किंचित् भी ध्यानमें न चला सकीं। सत्य है क्या मलयकी पवन कभी अचल सुमेरुको चला सकती है?

स्त्री चरित्रके साथ साथ स्त्रियोंकी प्यारी रात्रि भी पूर्ण हुई। प्रातःकाल हुआ। सूर्य उदय होते ही वे दुष्टनी विफल मनोरथ होकर वहांसे चली गईं और यहां मुनिराजके निश्चल ध्यानके कारण देवोंने जय जयकार शब्द करके पंचाश्चर्य किए।

निदान ये तीनों मुनिको उपसर्ग करनेके कारण गलित कोढ़को प्राप्त हुईं; रूप कला, सौन्दर्य सब नष्ट होगया, और आयुके अन्तमें मरकर पांचवें नरक गईं। बहुत काल तक वहांके दुःख भोगकर उज्जयनीके पास ग्रामपलास नामके एक गृहस्थकी ये पुत्रियां हुई है, सो छोटी अवस्थामें माता पिता मर गए। पूर्व पापके कारण ये तीनों प्रथम तो कुरूपा, कानी, कुवड़ी, कोढ़ी और तीस पर भी भंड वचन वोलनेवाली हैं इसीलिये ग्रामसे वाहर निकाल दी गई हैं सो वहांसे भटकती हुई यहां आई हैं और तू अपनी पट्टरानीके वियोगसे दुःखित होकर मरा सो हाथी हुआ। श्रीमुनिराजके उपदेशसे सम्यक्त्व सहित पंचाणुव्रत पालन करके मरा सो स्वर्गमें देव हुआ और देवपर्यायमे आकर यहा महीचन्द्र नामक राजा हुआ है। सो इनका तेरा पूर्व जन्मोंका सम्बन्ध होनेसे तुझे यह मोह हुआ है।

तब राजाने कहा—महाराज! क्या कोई उपाय ऐसा है कि जिससे ये कन्याएं पापसे छूटें? तब श्रीगुरुने कहा, राजन्! सुनो यदि ये श्रद्धापूर्वक लब्धिविधान व्रत पालें, तो सहज २ इस पापसे छुटकारा पावेंगी। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है:—

भादों, माघ और चैत्र सुदी एकमसे तीज तक (तीन दिन) एक वर्षमें ऐसे ५ वर्ष या ३ वर्ष तक करें पश्चात उद्यापन करें अथवा दुगुणा व्रत करें। व्रतके दिनोंमें या तो तेला करें या एकांतर उपवास करें या एकासना ही नित्य करें और महावीरस्वामीकी प्रतिमाका पंचामृताभिषेक पूर्वक पूजनार्चन करें। तीनों काल सामायिक करें "ॐ ह्रीं महावीर स्वामिने नमः" यह जाप करें। जागरण और भजन करें। उद्यापनकी विधि—जब व्रत पूर्ण हो जावे, तब सकल संघको भोजन करावें, चार संघमें चार प्रकारका दान करें, शास्त्रोंका प्रचार करें, पूजनके उपकरण व शास्त्र श्री जिनालयमें पधरावें इत्यादि।

इस प्रकार व्रतकी विधि और फल सुनकर उन तीनों कन्याओंने राजाकी सहायतासे व्रतपालन किया। और समाधिमरण कर पांचवें स्वर्गमें देव हुईं। राजा महीचन्द्र भी दीक्षा धर तप करके स्वर्ग गया। विशालनयना नाम रानीका जीव जो देव हुआ था, सो मगध देशके वाडव नगरमें काश्यप गोत्रीय सांडिल्य नाम ब्राह्मणकी सांडिल्या स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ। चमगी व रंगीके जीव भी देव पर्यायमें चयकर मनुष्य हो तपकर उत्तम गतिको प्राप्त हुए।

जब श्री महावीर भगवानको केवलज्ञान हुआ, परन्तु वाणी नहीं खिरी इसका कारण इन्द्रने जाना, कि गणधर विना वाणी नहीं खिरती है सो इन्द्र गौतम ब्राह्मणके पास "त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं" इत्यादि नवीन श्लोक बनाकर साधारण भेषमें गया और उसका अर्थ पूछा। जब गौतम उसके अर्थ लगानेमें गड़बड़ाया तब इन्द्र उसे भगवानके समवशरणमें ले आया, सो मानस्थंभ देखते ही गौतमका मान भंग हो गया और प्रभुके सन्मुख जाकर नमस्कार करके दीक्षा ली। सो जिनकथित चारित्रके प्रभावसे उसे चारों ज्ञान हो गये, और वह भगवानके गणधरोंमें प्रथम गणधर हुए। कितनेक काल जीवोंको सम्बोधन किया और महावीर प्रभुके पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाण पदको प्राप्त हुआ। उन गौतम स्वामीको हमारा नमस्कार हो।

लब्धि विधान व्रत फल थकी, विशालनयना नार। गणधर हो लह मोक्षपद, किये कर्म सब क्षार ॥

मौन एकादशी व्रत कथा।

घाति घात केवल लहो, लहो चतुष्क अनंत। सरल मोक्ष मग जिन कियो, वन्दू सो अर्हंत ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कौशल्य देश है। उसमें यमुना नदीके तट पर कोशांबी नामकी नगरी है, इसी नगरमें परम पूज्य छठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभुका जन्म कल्याणक हुआ था। एक समय इसी नगरमें हरिवाहन नामका राजा और उसकी शशिप्रभा पट्टरानी थी। राजपुत्रका नाम सुकोशल था। यह राजकुमार सर्व विद्या और कलाओंमें निपुण होनेपर भी निरंतर खेल तमाशों आदि क्रीड़ाओंमें निमग्न रहता था, और राजकाजकी ओर बिल्कुल भी ध्यान न देता था इसलिये राजाको निरंतर चिंता रहने लगी कि राजपुत्र राज्य कार्यमें योग नहीं देता है, तब भविष्यमें कार्य कैसे चलेगा? एक समय भाग्योदयसे सोमप्रभु नामके महा मुनिराज संघ सहित विहार करते हुए इसी नगरके उद्यानमें पधारे। राजाने वनमाली द्वारा ये शुभ समाचार सुनकर पुरवासियों सहित हर्षित होकर श्री गुरुके दर्शनोंको प्रयाण किया। और वहां पहुंचकर भक्तिभावसे वंदना स्तुति करके धर्मश्रवणकी इच्छासे नतमस्तक होकर बैठ गया। श्री गुरुने प्रथम मिथ्यात्वके छुड़ानेवाले और संसारसे भय उत्पन्न करानेवाले ऐसे मोक्षमार्गका व्याख्यान सुनाया। मुनि और श्रावकके धर्मोंको

पृथक् २ करके समझाया और यह भी बताया, कि यह श्रावक धर्म भी मुनिधर्मका कारण है और मुनिधर्म साक्षात् मोक्षका कारण है, इसलिये श्रावक धर्मको भी परम्परा मोक्षका कारण समझना चाहिए। यथार्थमें तो भव्य जीवोंको मुनिधर्म ही धारण करना चाहिए, परन्तु यदि शक्तिहीनताके कारण एकाएक मुनिधर्म न धारण कर सके, तो क्रमसे क्रम प्रतिमारूप श्रावकका धर्म ही धारण करें। और निरंतर अपने भावोंको बढ़ाता और शरीरादि इन्द्रियों तथा मनको वश करता जावे, तब ही अभीष्ट सुखको प्राप्त हो सकता है। श्रावक धर्म केवल अभ्यास ही के लिये है। इसलिए इसीमें रंजायमान होकर इति नहीं कर देना चाहिये, किन्तु मुनि धर्मकी भावना भाते हुवे उसके लिये तत्पर रहना चाहिये।

राजाने उपदेश सुनकर स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण किया और विशेष बातोंका श्रद्धान किया। पश्चात् अवसर देखकर पूछने लगा—हे नाथ! मेरा पुत्र विद्यादिमें निपुण होनेपर भी बालक्रीड़ाओंमें ही अनुरक्त रहता है और राज्यभोगमें कुछ भी नहीं समझता है इसकी चिंता है कि भविष्यमें राज्यस्थिति कैसे रहेगी?

राजाका प्रश्न सुनकर श्रीगुरुने कहा—इसी देशके कूट नाम नगरमें राजा रणसिंह और उसकी त्रिलोचना नामकी रानी थी। इसी नगरमें एक कुणबी रहता था। उसकी पुत्री तुंगभद्रा थी। इस भाग्यहीन कन्याके पापोदयसे शैशव अवस्थामें ही माता पिता आदि बन्धु बांधव सब कालवश हो गए और यह अनाथिनी अकेली अन्न वस्त्रसे वंचित हुई, जूंठन पर गुजर करती समय बिताने लगी।

वह जब आठ वर्षकी हुई, तो एक दिन घास काटनेको वनमें गई थी कि वहां पिहिताश्रव मुनिराजके दर्शन हो गए। यह बालिका भी और लोगोंके समान श्री गुरुको नमस्कार करके धर्मश्रवण करने लगी परन्तु भूखकी वेदनासे व्याकुल हुई, इसके कुछ भी समझमें नहीं आता था तब उस दुःखित कन्याने दुःखसे कातर होकर पूछा—हे दयानिधान गुरुदेव! मैं जन्मकी अनाथिनी अन्न वस्त्र तकका कष्ट पा रही हूं, इसलिए कृपाकर ऐसा कोई उपाय बताइए कि जिससे, मेरा दुःख दूर होवे। तब श्री गुरुने कहा—ऐ पुत्री! यह सब तेरे पूर्व जन्मके पापका फल है, अब तू श्री जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रंथ गुरु, और दयामई धर्म पर श्रद्धा करके भावसहित मौन एकादशीव्रतको पालन कर जिससे तेरे पापका क्षय होवे और संसारका अंत आवे। सुन! इस व्रतकी विधि इस प्रकार है:—

पौष वदी एकादशीको सोलह पहरका उपवास कर, और ये सोलहो पहर जिनालयमें धर्म कथा तथा पूजाभिषेकादि धर्मध्यानमें व्यतीत कर तीनों काल सामायिक कर, सोलहो पहर मौनसे रह, अर्थात् मुंहसे न वोल, हाथ नाक आंख आदिसे संकेत भी न कर, इस प्रकार जव सोलह पहर होजावें, तव द्वादशीके दोपहरको पूजाभिषेक करके सामायिक वा स्वाध्याय कर और फिर अतिथि (मुनि, गृहत्यागी) श्रावक तथा साधर्मी गृहस्थ व दीन दुःखित भुखितको भोजन कराकर आप पारणा कर, जो कोई व्रती पुरुष हो उनको नारियल या खारक वदाम आदि वांटे। इस प्रकार ग्यारह वर्ष तक यह व्रत करके फिर उद्यापन कर और जो उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत कर। उद्यापन विधि इस प्रकार है कि आवश्यकता होवे तो श्री जिनमंदिर वनवावे, २४ महाराजकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करके पधरावे, घंटा झालर, चौकी, चन्दोवा, छत्र, चमर, शास्त्रादि २४ चौवीस जिनालयोंमें पधरावे, शास्त्र भंडारकी स्थापना करे, ग्रन्थ वितीर्ण करे, विद्यार्थियोंको भोजन करावे, यथा आवश्यक संघको जिमावे। नारियल आदि फल साधर्मियोंको वांटे, महापूजा विधान करे, दुःखी अपाहिजोंको भोजन वस्त्र औषधि आदि दान करे। भयभीत जीवोंको अभयदान देवे, इत्यादि विधि सुन उस दरिद्र कन्याने भावसहित व्रत पालन किया और अन्त समय सन्यास सहित णमोकार मंत्रका स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर तेरे घर यह पुत्र हुआ है। यह पुत्र चर्म शरीरी है, इसीसे राज्य भोगमें इसका चित्त नहीं लगता है, यह बहुत ही थोड़े समय घर रहेगा।

राजा इस प्रकार श्रीगुरुके मुखसे अपने पुत्रका वृत्तांत सुनकर घर आया। संसार, देह, भोगोंसे विरक्त होकर उसने अपने पुत्रको राज्यतिलक किया पश्चात् पिहिताश्रव आचार्यके पास दीक्षा लेली, इसके साथ और भी वहुत राजाओंने दीक्षा ली।

और राजा सुकोमल राज्य करने लगा। सो यह अल्पसंसारी राजनीतिकी कुटिलताको न जानता हुआ सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगा। एक समय मतिसागर नाम भंडारीने श्रुतसागर नाम मंत्रीसे मंत्र किया कि राजा राजनीतिसे अनभिज्ञ है, इसलिये इसे कैद करके मैं तुम्हें राजा वनाये देता हूं। और मैं मंत्री होकर रहूंगा। परन्तु यह वार्ता मतिसागरके पुत्र और राजाके वालसखा द्वारा राजाके कान तक पहुंच गई। राजाने मतिसागरको इस कुटिलता व धृष्टताके वदले अपमान सहित देशसे निकाल दिया। और श्रुतसागरको राज्यभार सौंपकर आप अपने पिताके पास गए और दीक्षा ले ली।

वह मतिसागर भंडारी भ्रमण करते हुए दुःखसे (आर्तभावोंसे) मरणकर सिंह हुआ, सो वनमें विकराल रूप धारण किये अनेक जीवोंका घात करता हुआ विचरता था, कि उसी वनमें विहार करते हुए वे हरिवाहन और सुकौशल स्वामी आ पहुंचे। सिंहने इन्हें देखकर पूर्व वैरके कारण क्रोधित होकर शरीरको विदीर्ण कर दिया। वे मुनिराज उपसर्ग जानकर निश्चल हो शुक्लध्यानको धारणकर आत्मामें निमग्न हो गये तब सिंह भी उपशांत होकर वहांसे चला गया और वे मुनि अन्तकृत केवली होकर सिद्ध पदको प्राप्त हुए और वह सिंह मुनि हत्याके कारण मरकर नरकमें घोर दुःख भोगनेको चला गया। निःसन्देह प्राणी अपने ही किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख व दुःख भोगा करते हैं। इस प्रकार एक दरिद्रा कन्याने भी मौन एकादशी व्रत श्रद्धा व भक्ति पूर्वक पालन किया जिसके फलसे वह सुकौशल स्वामी होकर सकल कर्मोंका क्षय कर सिद्धपदको प्राप्त हुई। और जो भव्य जीव ज्ञान व श्रद्धान पूर्वक पालें, तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको पावेंगे

तुगभद्र कन्या कियो, मौन व्रत चित्त धार। पायो अविचल सिद्धपद, किये कर्म सब छार ॥

गरुड़ पंचमी व्रत कथा।

वीतराग पद वंदके, गुरु निर्ग्रन्थ मनाय। गरुड़ पचमी व्रत कथा कहूं, सबहिं सुखदाय ॥

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें रत्नपुर नामका नगर है। वहां गरुड नामका विद्याधर राजा अपनी गरुडा नामकी रानी सहित सानन्द राज्य करता था। यह राजा अति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक सदैव अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पुजा वंदना करता था।

एक दिन मार्गमें इसके पूर्वभवके वैरीने अपना बदला लेनेके हेतु इसकी विद्या छीन ली और इसे भूमिपर गिरा दिया।

सो वह राजा अपने स्थानको जानेमें असमर्थ हुआ, उद्यानमें भ्रमण करता था कि सौभाग्यसे उसे परमगुरु निर्ग्रन्थका अचानक दर्शन हो गया, राजा श्री गुरुको देखकर गद्‌गद् होकर विनय सहित नमस्कार कर पूछने लगा— हे प्रभु! मैं मदभागी विद्याविहीन हुआ भटक रहा हूं। कृपा करके मुझे कोई ऐसा यत्न बताइये कि जिससे पुनः विद्या प्राप्त कर स्वस्थान तक जा सकूं।

यह सुनकर श्री गुरुने कहा—हे भद्र, धर्मके प्रसादसे सब काम स्वयमेव सिद्ध होते हैं। कहा है: "धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण। धर्म पथ साधे विना, नर तिर्यंच समान" इसलिये तू सम्यक्त्व सहित "गरुड पंचमी व्रत" को पालन कर इससे धरणेन्द्र व पद्मावती प्रसन्न होकर तेरी मनोकामना पूर्ण करेंगे।

देखो इसका फल इस प्रकार है—

मालवे देशमें चिंच नामका एक ग्राम है, वहा नागगौड नामी एक मनुष्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम कमलावती था। उसके मंडालल, पखेल, राम, सोम और भीम ऐसे ५ पुत्र और चारित्रमती नामकी एक कन्या थी। नागगौडने अपनी चारित्रमती कन्याको तब ग्रामके धनदत्त गौडके पुत्र मनोरमणके साथ व्याह दी। ये दोनों नवदम्पति सुखसे रहने लगे। कितनेक दिन पश्चात् इनके शांति नामका एक बालक हुआ। एक दिन सुगुप्त नामके मुनि चर्या (भिक्षा) के हेतु नगरमें पधारे, उन्हें देखकर चारित्रमतीको अत्यानंद हुआ और भक्तिपूर्वक पडगाह कर प्रासुक भोजनपान कराया, मुनिराजने भोजनके अनन्तर " अक्षय निधि " यह शब्द कहे। इतने हीमें एक आदमीने आकर चारित्रमतीको उसके पिताके बीमार होनेकी खबर दी। यह सुनकर चारित्रमतीने श्री गुरुसे पूछा—हे नाथ, मेरे पिताको कौनसी व्याधि हुई है? तब श्री गुरुने कहा, पुत्री! तेरे बापके खेतमें एक बडका झाड़ था, उसके नीचे एक सापकी बांबी थी, उस बांबीमें एक पार्श्वनाथ और दूसरी नेमिनाथ स्वामीकी प्रतिमा थी जिनकी पूजा हमेशः भवनवासी देव करते थे। सो तेरे बापने उस झाडको कटवाकर बांबीको नष्ट कराया है। इससे उन भवनवासी देवोंने क्रोधित होकर विषैली दृष्टिसे तेरे पिताको देखा है। और इसीसे वह मूर्छित हो गया है। तब चारित्रमतीने पूछा—हे नाथ, अब क्या यत्न करना चाहिये जिससे पिताजीको आराम मिले। तब श्री गुरुने कहा—पुत्री, तू श्रद्धापूर्वक गरुड पंचमी व्रत पालन कर उससे तेरे पिताकी मूर्छा दूर होकर वह स्वस्थ हो जावेगा। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि श्रावण सुदी पंचमीको उपवास करना, तीनों सन्ध्यामें सामायिक करना, मन्दिरमें जाकर श्री जिनेन्द्रका अभिषेक पूजन करना, फिर होम (हवन) करना, देवल (मन्दिर) में बांबी बनाना, उसमें दूध, घी, मिश्री, पाणी, कमल, काकडी तथा फूल आदि डालना, अर्हत प्रभुके ५ अष्टक चढाना, ५ माला "ॐ अर्हद्भ्यो नमः" इस मंत्रको जपना, मंगल-गान-भजन जागरण करना, आरती करना, आशीर्वाद बोलना। इस प्रकार पांच वर्ष तक

यह व्रत पालना, पश्चात् उद्यापन करना, यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो द्विगुणित (दूना) व्रत करना, उद्यापनकी विधि इस प्रकार है कि–आरती, थाली, कलश, धूपदान, चमर, चंदोवा, अछार, शास्त्र आदि उपकरण पांच पांच लाकर जिनालयमें भेंट देवे। और समादान (दीवी), घंटा, पानीके लिये घडा, झारी, मदिरमें पधरावे व अष्ट द्रव्यसे भाव सहित अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पांच श्रावक तथा श्राविकाओंको भोजन करावे तथा दुःखित भुखितको करुणाबुद्धिसे आहारादि चारो प्रकारके दान देवे।

चारित्रमतीने नमस्कार कर उक्त व्रत ग्रहण किया। पश्चात् श्रीगुरुने कहा–पुत्री यह व्रत तू अपने पीहर (पितृगृह) में जाकर करना और गंधोदक अपने पिताके गलेमें लगाना, इससे वह मूर्छा रहित होजायगा। और श्रावण सुदी ५ के दूसरे दिन श्रावण सुदी ६ को नेमनाथ स्वामीका व्रत है। सो उस दिन अर्हत भगवानके छः अष्टक और छः माला जपना, पूजन अभिषेक करना, हवन करना और पूजनादिके पश्चात् ककडी, नारियल आदि शुभ फल प्रत्येक छः छः लेकर छः सौभाग्यवती स्त्रियोंको देना। पश्चात् इसका भी उद्यापन करना अथवा दूना व्रत करना। इस प्रकार दोनो व्रत ग्रहण कर चारित्रमती अपने पिताके घर गई और यथाविधि व्रत पालन किया तथा अपने पिताको गंधोदक लगाया जिससे वह मूर्छारहित हो स्वस्थ हो गया। यह चर्चा सब नगरमें फैल गई और इस प्रकार यह गरुड (नाग) पचमीके व्रतका प्रचार संसारमें हुआ।

कुछ दिन बाद चारित्रमती घर (स्वसुर गृह) जाने लगी, परंतु पिताके आग्रहसे और ठहर गई। एक दिन वह चारित्रमती अपने बापके खेतमें निर्मल सरोवर पर जाकर पूजा करने लगी। इसी बीचमें वे ही मुनिराज जिन्होंने व्रत दिया था वहा भ्रमण करते हुए आ पहुंचे।

उन्हें देख कर चारित्रमतीने नमस्कार वंदना की और विनम्र हो धर्म श्रवणकी इच्छासे वहीं बैठ गई। धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर चारित्रमतीने अपने घरकी कुशल पूछी। तब श्री मुनिने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा–बेटी तेरे पुत्रको तेरी सौकीने नदीमें डाल दिया है। सो यदि तू श्रावण सुदी ६ का व्रत पालन करेगी, तो तेरे पुत्रको पद्मावती देवी लाकर तुझे देवेगी। यह सुनकर चारित्रमती घर आई और मन वचन कायसे छठका व्रत पालन किया। इससे कुछ दिन

पश्चात् उसका पुत्र उसे मिल गया। इस प्रकार चारित्रमतीने मन वचन कायसे व्रत पालन किये और विधि सहित उद्यापन किये, पश्चात् धर्मध्यान करती हुई अन्तमें सन्यासमे मरण कर वह स्त्री लिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई, वहांसे आकर राजपुत्र हुई। पश्चात् राजपुत्र भी कारण पाकर वैराग्यको प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर शुक्लध्यानके बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार व्रतका फल सुनकर गरुड़ विद्याधरने मन वचन कायसे व्रत पालन किया जिससे उसे पुनः विद्या सिद्ध हो गई और वह बहुत काल तक मनुष्योचित सुख भोगकर अंतमें वैराग्यको प्राप्त हो गया और दीक्षा ले तप करने लगा। पश्चात् शुक्लध्यानके बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध पद पाया। इस प्रकार यदि अन्य भव्य जीव भी श्रद्धा सहित व्रत पालन करेंगे, तो अवश्य ही उत्तम फल पावेंगे।

गरुड और चारित्रमती, अहि पचमि व्रत पाल। लहो शुद्ध शिव पद सही, तिनहिं नमू तिहु काल॥

द्वादशी व्रत कथा।

नमों सारदा पद कमल, स्याद्वाद मय सार। जा प्रसाद द्वादशि कथा, कहू भव्य हितकार॥

माल्वा प्रदेशमें पद्मावतीपुर था। जहा नरब्रह्मा राजा अपनी विजयावती रानी सहित राज्य करता था। इस राजाके एक कुबडी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीलावती पडा। एक दिन शीलावतीको रोती हुई देखकर राजा रानीको अत्यन्त दुःख हुआ व अनेक प्रकारकी चिंता करने लगे। किसी दिन भाग्योदयसे उसी नगरमें श्रमणोत्तम नामक मुनिराज विहार करते हुए आये। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हो नगरके लोगों सहित वंदनाको गया। स्तुति वंदनाके अनन्तर धर्मोपदेश श्रवण किया। पश्चात् अवसर पाकर राजाने पूछा–प्रभु मेरी पुत्री शीलावतीको कौन पापके उदयसे यह दुःख प्राप्त हुआ है। तब श्री गुरुने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा। ऐ राजा, सुनो–अवन्तीदेशमें आडलपुर नगर है, वहां राजपुरोहित देशवर्मा और उसकी कालसुरी नामकी ब्राह्मणी रहती थी। इस ब्राह्मणके कपिला नामकी कन्या थी। एक दिन यह कन्या सखियों सहित बनक्रीडा निमित्त उपवनमें गई और वहा आमके वृक्षके नीचे परम दिगंबर ऋषिराजको कायोत्सर्ग ध्यान करते हुए देखा। सो अपने रूपादिके मदसे मदोन्मत्त उस कन्याने मुनिकी बहुत निंदा की। कुत्सित

शब्द भी कहने लगी कि यह नंगा ढोंगी और अत्यन्त कामासक्त व्यभिचारी है। यह स्त्रियोको अपना गुप्त अङ्ग दिखलाता फिरता है, यह लज्जा रहित हुआ कभी वन और कभी वस्तीमें भटकता फिरता है। लघनें करके अपनेको महात्मा वताता है इत्यादि। निंदा करते हुए मुनिराजपर मिट्टी धूल आदि डाली, मस्तकपर थूका तथा और भी वहुत उपसर्ग किया। सो मुनि तो उपसर्ग जीतकर शुक्लध्यानके योगसे केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्षको प्राप्त हुए और वह कन्या मरकर पहिले नर्कमें गई, वहां वहुत दुःख भोगे, वहांसे निकल कर गधी हुई, फिर सूकरी हुई, फिर श्यनी हुई, फिर विल्ली हुई, फिर नागनी हुई, फिर चाडालके घर कन्या हुई और वहांसे आकर अव यह तुम्हारे घर पुत्री हुई है। इस प्रकार पुत्रीके भवांतरकी कथा सुनकर राजाने कहा। प्रभु इस पापके निवारण करनेके लिये कोई धर्मका अवलम्वन वताइये। तव श्री गुरुने कहा कि यदि यह द्वादशीका व्रत करे, तो पांपका नाश होकर परम सुखको प्राप्त हो। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है, कि भादों सुदी १२ के दिन उपवास करे और सम्पूर्ण दिन धर्मध्यानमें वितावे, तीनो काल सामायिक करे, जिन मंदिरमें जाकर वेदीके सन्मुख पंच रंगोसे तन्दुल रंगकर साथिया काढे, तथा मंडल वनावे। उसपर सिंहासन रख चतुर्मुखी जिन विम्व पधरावे, फिर पंचामृताभिषेक करे, अष्ट द्रव्यसे पूजन करे। भजन और जागरण कर स्वच्छ और सुगन्धी पुष्पोंसे जाप देवे। फिर जलसे परिपूर्ण कलस लेकर उसपर नारियल रक्खे तथा नवीन कपड़ेसे ढांककर एक रकावीमें अर्घ्य सहित लेकर तीन प्रदक्षिणा देवे। धूप खेवे, कथा सुने। इस प्रकार श्रद्धायुक्त वारह वर्ष तक व्रत पाले। फिर उद्यापन करे। अर्थात् नवीन चार प्रतिमा पधरावे अथवा चार महान शास्त्र लिखाकर जिनालयमें पधरावे। कलश, छत्र, चमर, झारी, दर्पण आदि अष्ट मंगल द्रव्य तथा अन्य आवश्यक उपकरण मंदिरमें भेट देवे। चार प्रकारके संघको भक्ति युक्त तथा दीन दुखियोंको करुणाभावसे चारों प्रकारके दान देवे, जिसे उद्यापनकी शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करना चाहिये। इस प्रकार व्रतकी विधि कहकर श्री गुरुने कहा—हे राजा! तुम्हारी पुत्री शीलावतीके अर्ककेतु और चन्द्रकेतु नामके दो पुत्र होंगे। इनमेंसे अर्ककेतु निज वाहुवलसे संग्राममें अनेक राजाओंको जीतकर प्रख्यात राजा होगा, पश्चात् संसार भोगोंसे विरक्त हो जिन दीक्षा लेकर परम तप करेगा। उसके साथ उसकी माता शीलावती भी दीक्षा लेगी और आयुके अंतमें समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेदकर वारहवें स्वर्गमें देव होगी। वहांसे आकर छत्रपती राजा होगी। फिर दीक्षा लेकर

केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष जावेगी। अर्ककेतु और चन्द्रकेतु भी मोक्ष जावेंगे। यह समाचार सुनकर राजाने मुनिको नमस्कार किया और श्रद्धापूर्वक व्रतकी विधि सुनकर घर आया। मुनिराजके कहे प्रमाण व्रत पालन तथा उद्यापन विधिपूर्वक किया जिससे भवांतरोंके पापोंका नाश हुआ। इस प्रकार द्वादशीके व्रतका माहात्म्य है, जो कोई भव्य जीव श्रद्धा और भक्तियुक्त व्रत करेंगे और कथा सुनेंगे उनको अक्षय पुण्य और सुखकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार द्वादशि कथा, पूरण भई सुखकार। व्रत फल शीलवति लियो, अक्षय सुख भंडार ॥

अथ अनंतव्रत कथा।

नमों अनत अनत गुण, नायक श्री तीर्थेश। कहु अनत व्रतकी कथा, दीजे बुद्धि जिनेश ॥

इसी जम्बूद्वीपके आर्यखंडमें कौशल देश है। उसमें अयोध्या नगरीके पास पद्मखंड नाम ग्राम था। उस ग्राममें सोमशर्मा नामका एक अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी सोमा नामकी स्त्री और बहुतसी पुत्रियों सहित रहता था। वह (ब्राह्मण) विद्याहीन और दरिद्र होनेके कारण भिक्षा माग कर उदर पोषण करता था, तो भी भरपेट खानेको न पाता तब एक दिन अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे उसने सह कुटुम्ब विदेशको प्रस्थान किया। चलते समय मार्गमें शुभ शकुन हुए, अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियां सन्मुख मिलीं। कुछ और आगे चला तो क्या देखता है, कि हजारों नरनारी किसी स्थानको जा रहे हैं, पूछनेसे विदित हुआ कि वे सब श्री अनंतनाथ भगवानके समोशरणमें वंदनाके लिये जारहे हैं। यह जानकर वह ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया और समोशरणमें गया। वहा प्रभुकी वदना कर तीन प्रदक्षिणा दी और नर कोठेमें यथास्थान जा बैठा। समवशरणमें दिव्यध्वनि सुनकर उसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई। पश्चात् चारित्रका कथन सुनकर उसने जुआ, मांस, मद्य, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन ये सात व्यसन त्याग किये। पंच उदम्बर और तीन मकार त्याग ये अष्ट मूलगुण भी धारण किये। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अतिशय लोभ इन पञ्च पापोंका एक देश त्याग रूप अणुव्रत और तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी ग्रहण किये। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित बारह व्रत लिये। पश्चात् कहने लगा—हे नाथ! मेरी दरिद्रता किस प्रकारसे मिटे सो कृपा करके कहिये। तब भगवानने उसे

अनन्त चौदशका व्रत करनेको कहा। व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी ११-१२ और १३ को एकासना करे। अर्थात् एकासनसे मौन सहित स्वादरहित प्रासुक भोजन करे, सात प्रकार गृहस्थोंके अन्तराय पाले, पश्चात् चतुर्दशीके दिन उपवास करे, चारों दिन ब्रह्मचर्य रखे, भूमिपर शयन करे, व्यापार आदि गृहारम्भ न करे, मोहादि रागद्वेष तथा क्रोध मान माया लोभ हास्यादिक कषायोंको छोडे, सोना, चांदी या रेशम सूत आदिका अनन्त बनाकर, इसमें प्रत्येक गांठपर १४ गुणोंका चिंतवन करके १४ गांठ लगाना। प्रथम गांठपर ऋषभनाथ भगवानसे अनन्तनाथ भगवान तक १४ तीर्थंकरोंका नाम उच्चारण करे। दूसरी गांठपर सिद्ध परमेष्ठीके १४ गुण चिंतवन करे। तीसरी पर १४ मुनि जो मति श्रुत अवधि ज्ञान युक्त हो गये हैं उनका नाम उच्चारण करे। चौथीपर केवली भगवानके १४ अतिशय केवलज्ञान कृत स्मरण करे। पांचवी पर जिनवाणीमें जो १४ पूर्व हैं उनका चिंतवन करे। छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका विचार करे। सातवी पर चौदह मार्गणाओंका स्वरूप विचारे। आठवीं पर १४ जीवसमासोंका विचार करे। नवमीं पर गङ्गा आदि १४ नदियोंका नामोच्चारण करे। दशवीपर तीन लोक जो १४ राजू प्रमाण ऊँचा है उसका विचार करे। ग्यारहवीं पर चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंका चिंतवन करे। बारहवी पर चौदह स्वर (अक्षर) चिंतवन करे। तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका विचार करे। चौदहवीं गांठपर मुनिके मुख्य १४ दोष टालकर जो आहार लेते हैं उनका विचार करे। इस प्रकार १४ गाठ लगाकर मेरुके ऊपर स्थापित प्रतिमाके सन्मुख इस अनन्तको रखकर अभिषेक करे। अनन्तनाथ प्रभुका पूजन करे। फिर नीचे लिखा मंत्र १०८ वार जपे।

मंत्र–ॐ नमो अर्हते भगवते अणतो अनन्त सिझझ धम्मे भगवतो महविझझा, ॐ महा विझझा अनंतानंत केवलीय अनत केवलणाणें, अनंत केवल दसणें, अणु पुज वासणें, अंनंते अनतागम केवलि स्वाहा (१) अथवा छोटा मंत्र जपे।

मंत्र–ॐ ह्रीं अर्हं हंसः अनतकेवलिने नमः (२)

इस प्रकार चारों दिन अभिषेक, जप और जागरण भजन पूजादि करे। फिर पूनमके दिन उस अनंतको दाहिनी भुजा पर या गलेमें बांधे। पश्चात् उत्तम, मध्यम या जघन्य पात्रोंमेंसे जो समयपर मिल सके आहार आदि दान देकर आप पारणा करे। इस प्रकार १४ वर्ष तक करे। पश्चात् उद्यापन करे। १४ प्रकारके उपकरण मंदिरमें देवे, जैसे शास्त्र,

चमर, छत्र, चौकी आदि, चार प्रकार संघको आमन्त्रण करके धर्मकी प्रभावना करे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। इस प्रकार श्री मुखसे व्रतकी विधि और उत्तम फल सुनकर उस ब्राह्मणने स्त्री सहित यह व्रत लिया और भी बहुत लोगोंने यह व्रत लिया। पश्चात् नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने ग्राममें आया और भार्या सहित १४ वर्ष व्रतको विधियुक्त पालन करके उद्यापन किया। इससे दिनों दिन उसकी बढ़ती होने लगी। इसके साथ रहनेसे और भी बहुत लोग धर्म मार्गमें लग गये, क्योंकि लोग जब उसकी इस प्रकार बढ़ती देखकर उससे इसका कारण पूछते तो वह अनंत व्रत आदि व्रतोंकी महिमा और जिनभाषित धर्मके स्वरूपका कथन कह सुनाता, इससे बहुत लोगोंकी श्रद्धा उसपर हो जाती और वे उसे गुरु मानने लगते। इस प्रकार वह ब्राह्मण भले प्रकार सांसारिक सुखोंको भोग कर अंतमें सन्याससे मरण कर स्वर्गमें देव हुआ। उसकी स्त्री भी समाधिसे मर कर उसी स्वर्गमें उसीकी देवी हुई। अपनी पूर्व पर्यायका अवधिसे विचार धर्मध्यान सेवन करके वहांसे चये सो वह ब्राह्मणका जीव अनतवीर्य नामका राजा हुआ और और ब्राह्मणी उसकी पट्टरानी हुई। ये दोनों दीक्षा लेकर अनंतवीर्य तो इसी भवसे मोक्षको प्राप्त हुए और श्रीमती स्त्री लिंग छेदकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई। वहांसे चयकर मध्य लोकमें मनुष्यभव धारण कर संयम ले मोक्ष जावेगी। इस प्रकार एक दरिद्र ब्राह्मण और ब्राह्मणी अनंत व्रत पालकर सद्गतिको पाकर उत्तमोत्तम गतिको प्राप्त हुए। यदि अन्य भव्य जीव पालेंगे, तो वे भी सद्गति पावेंगे।

सोमशर्म सोमा सहित, अनत चौदश व्रतपाल। लहो स्वर्ग अरु मोक्ष पद, ते बन्दू त्रैकाल ॥

अथ अष्टान्हिका (नंदीश्वर) व्रत कथा।

वन्दो पाचो परमगुरु, चौवीसों जिनराज। अष्टान्हिक व्रतकी कहू, कथा सबहि सुखकाज ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्डमें अयोध्या नामका एक सुन्दर नगर है। वहां हरिसेन नामका चक्रवर्ती राजा अपनी गन्धर्वश्री नामकी पट्टरानी सहित न्यायपूर्वक राज्य करता था। एक दिन वसन्त ऋतुमें राजा नगरजनो तथा अपनी ९६००० रानियों सहित वन क्रीडाके लिये गया। वहां निरापद स्थानमें एक स्फटिक शिलापर असन्त क्षीण-

शरीरी महा तपस्वी परम दिगम्बर अरिंजय और अमितंजय नामके चारण मुनियोंको ध्यानारूढ़ देखा। सो राजा भक्ति पूर्वक निज वाहनसे उत्तर कर पट्टरानी आदि समस्त जनों सहित श्री मुनियोंके निकट बैठ गया और सविनय नमस्कार कर धर्मका स्वरूप सुननेकी अभिलाषा प्रगट करता हुआ। मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो धर्मवृद्धि दी, और पश्चात धर्मोपदेश करने लगे। मुनिराज बोले–राजा! सुनो, संसारमें कितनेक लोग, गंगादि नदियोंमें नहानेको, कोई कंदमूलादि भक्षणको, कोई पर्वतसे पड़नेमें, कोई गयामें श्राद्धादि पिंड दान करनेमें, कोई ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिककी पूजा करनेमें वा भैरो भवानी, काली आदि देवियोंकी उपासनोंमें ही धर्म मानते हैं अथवा नवग्रहादिकोंके जप कराने और मस्तसांडों सदृश कुतपस्वियों आदिको दान देनेमें कल्याण होना समझते हैं, परन्तु यह सब धर्म नहीं है और न इससे आत्महित होता है किन्तु केवल मिथ्यात्वकी वृद्धि होकर अनन्त संसारका कारण बंध ही होता है, इसलिये परम पवित्र अहिंसा (दयामई) धर्मको धारण कर जो समस्त जीवोंको सुखदाई है और निर्ग्रन्थ मुनि (जो संसारके विषयभोगोंसे विरक्त ज्ञान ध्यान तपमें लवलीन हैं किसी प्रकारका परिग्रह (आडम्बर) नहीं रखते हैं और सबको हितकारी उपदेश देते हैं) को गुरु मानकर उनकी सेवा वैयावृत कर, जन्म मरण, रोग शोक, भय, परिग्रह, क्षुधा, तृषा, उपसर्ग आदि सम्पूर्ण दोषोंसे रहित वीतराग देवका आराधन कर। जीवादि तत्वोंका यथार्थ श्रद्धान करके निजात्म तत्वको पहिचान, यही सम्यग्दर्शन है, ऐसे सम्यग्दर्शन तथा ज्ञानपूर्वक सम्यक चारित्रको धारण कर; यही मोक्ष (कल्याण) का मार्ग है।

सातों व्यसनका त्याग, अष्ट मूलगुण धारण, पंचाणुव्रत पालन इत्यादि गृहस्थोंका चारित्र है और सर्व प्रकार आरंभ परिग्रहसे रहित द्वादश प्रकारका तप करना, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति आदिका धारण करना सो अट्ठाइस मूल गुणों सहित मुनियोंका धर्म है (चारित्र है)। इस प्रकार धर्मोपदेश सुनकर राजाने पूछा–प्रभो, मैंने ऐसा कौन पुण्य किया है? जिससे यह इतनी बड़ी विभूति मुझे प्राप्त हुई है। तब श्री गुरुने कहा, कि इसी अयोध्या नगरीमें कुबेरदत्त नामका वैश्य और उसकी सुन्दरी नामकी पत्नी रहती थी, उसके गर्भमें श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयचंद्र ये तीन पुत्र हुए। सो श्रीवर्माने एक दिन मुनिराजको वंदना करके आठ दिनका नंदीश्वर व्रत लिया, और उसे बहुत काल तक यथाविधि पालन कर आयुके अंतमें सन्यास मरण किया जिसमें प्रथम स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ, वहां असंख्यात वर्षों

देवोचित सुख भोगकर आयु पूर्ण कर चया सो उसी अयोध्यानगरीमें न्यायी और सत्यप्रिय राजा चक्रवाहुकी रानी विमला देवीके गर्भसे तू हरिसेन नामका पुत्र हुआ है। और तेरे नंदीश्वर व्रतके प्रभावसे यह नव निधि, चौदह रत्न, छ्यानवे हजार रानी, आदि चक्रवर्तिकी विभूति और यह छः खंडका राज्य प्राप्त हुआ है। और तेरे दोनो भाई जयकीर्ति और जयचन्द्र भी श्री धर्म गुरुके पाससे श्रावकके बारह व्रतों सहित उक्त नंदीश्वर व्रत पाल कर आयुके अंतमें समाधिमरण करके स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए थे सो वहांसे चय कर वे हस्तिनापुरमें विमल नामा वैश्यकी साध्वी सती लक्ष्मीमतिके गर्भसे अरिंजय और अमितजय नामके दोनो पुत्र हुए सो वे दोनों भाई हम ही हैं। हमको पिताजीने जैन उपाध्यायके पास चारो अनुयोग आदि सम्पूर्ण शास्त्र पढाये और अध्ययन कर चुकनेके अनन्तर कुमार काल वीतने पर हम लोगोंके व्याहकी तैयारी करने लगे, परन्तु हम लोगोंने व्याहको बंधन समझकर स्वीकार नहीं किया और बाह्याभ्यंतर परिग्रहको त्याग करके श्री गुरुके निकट दीक्षा ग्रहण की। सो तपके प्रभावसे यह चारण ऋद्धि प्राप्त हुई है। यह सुनकर राजा बोला; हे प्रभु! मुझे भी कोई व्रतका उपदेश करो, तब श्री गुरुने कहा कि तुम नंदीश्वर व्रत पालो और श्री सिद्धचक्रकी पूजा करो। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है सो सुनो—

इस जम्बूद्वीपके आसपास लवण समुद्रादि असंख्यात समुद्र और धातकी खंडादि असंख्यात द्वीप, एक दूसरेको चूड़ीके आकार घेरे हुए दूने दूने विस्तारको लिए हैं। उन सब द्वीपोंमें जम्बूद्वीप नाभिवत् सबके मध्य है, सो जम्बूद्वीपको आदि लेकर, जो धातकीखंड, पुष्करवर, वारुणीवर, क्षीरवर, घृतवर, इक्षुवर और नंदीश्वर ये आठ द्वीप हैं उनमें आठवें नंदीश्वर द्वीपमें प्रत्येक दिशामें एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर इस प्रकार १३ तेरह पर्वत हैं। चारो दिशाओंके मिलकर सब ५२ पर्वत हुए। इन प्रत्येक पर्वतोंपर अनादिनिधन (साश्वते) अकृत्रिम जिन भवन हैं और प्रत्येक मंदिरमें १०८ जिन बिम्ब अतिशययुक्त विराजमान हैं, ये जिन बिम्ब ५०० धनुष ऊँची हैं। वहां इन्द्रादि देव जाकर नित्य प्रति भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, परन्तु मनुष्यका गमन नहीं होता, इसलिये मनुष्य उन चैत्यालयोंकी भावना अपने २ स्थानीय चैत्यालयोंमें ही भाते हैं और नंदीश्वर द्वीपका मण्डल माडकर वर्षमें तीनवार (कार्तिक, फाल्गुण और अषाढ़ मासके शुक्ल पक्षोंमें अष्टमीसे पूनम तक) आठ आठ दिन पूजनाभिषेक करते हैं और आप

करते हैं, अर्थात् सुदी सातमसे धारणा करनेके लिये नहाकर प्रथम जिनेन्द्रदेवका अभिषेक पूजा करे फिर गुरुके पास अथवा गुरु न मिलें तो जिन बिंबके सन्मुख खडे होकर व्रतका नियम करे। सातमसे पडिवा तक ब्रह्मचर्य रक्खे। सातमको एकासन करे, भूमिपर शयन करे, सचित्त पदार्थोंका त्याग करे। आठमको उपवास करे, रात्रि जागरण करे, दिनमें मंडल मांडकर अष्ट द्रव्योंसे पूजा और अभिषेक करे, पंचमेरुकी स्थापना कर पूजा करे, चौबीस तीर्थंकरोंकी पूजा जयमाल पढे, नंदीश्वर व्रतकी कथा सुने और 'ॐ ह्रीं नंदीश्वरसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे। आठमके उपवाससे १० दश लाख उपवासोंका फल मिलता है। नवमीको सब क्रिया आठमके समान ही करना, केवल 'ॐ ह्रीं अष्ट महाविभूतिसंज्ञाय नमः' इस मंत्रकी १०८ जाप करे और दोपहर पश्चात् पारणा करे। इस दिन दश हजार उपवासोंका फल होता है। दशमीके दिन भी सब क्रिया आठमके समान ही करे, केवल 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञाय नमः' इस मंत्रका जाप १०८ करे और केवल पानी और भात खावे। इस दिन व्रतका फल साठ लाख उपवासके समान होता है। ग्यारसके दिन भी सब क्रिया आठमके समान करे, सिद्धचक्रकी त्रिकाल पूजा करे और 'ॐ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः' इस मंत्रका १०८ वार जाप करे और ऊनोदर (अल्प भोजन) करे। इस दिनके व्रतसे ५० लाख उपवासका फल होता है। बारसको भी सब क्रिया ग्यारसके ही समान करे और 'ॐ ह्रीं पंच महालक्षण संज्ञाय नमः' इस मंत्रका १०८ जाप करे तथा एकासन करे, इस दिनके व्रतसे ८४ लाख उपवासोंका फल होता है, तेरसके दिन भी सर्व क्रिया बारसके ही समान करे केवल ॐ ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञाय नमः' इस मंत्रका १०८ वार जाप करे और इमली और भातका भोजन करे। इस दिनके व्रतसे ४० लाख उपवासका फल मिलता है। चौदसके दिन सब क्रिया ऊपरके समान ही करे और 'ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राय नमः' इस मंत्रका १०८ जाप करे तथा त्रण (सूखा) साग यदि शुद्ध हो तो उसके साथ अथवा पानीके साथ भात खावे इस दिन व्रतका फल १ करोड़ उपवासका होता है। पूनमके दिन सब क्रिया ऊपरके ही समान करे, केवल 'ॐ ह्रीं इन्द्र-ध्वज संज्ञाय नमः' इस मंत्रका १०८ जाप करे तथा चार प्रकार आहारका त्याग करे, अनशन व्रत करे। इस दिनके व्रतका फल तीन करोड़ पांच लाख उपवासके जितना फल होता है। पश्चात् पडिमाके दिन पूजनादि क्रियाके अनन्तर घर आकर चार प्रकार संघको चार प्रकारका दान करके पीछे आप पारणा करे।

जो कोई इस व्रतको तीन वर्ष तक करता है उसे स्वर्ग सुख मिलता है। पीछे कितनेक भवमें नियमसे मोक्ष पद पाता है और जो पांच वर्ष करता है वह उत्तमोत्तम सुख भोगकर सातवें भव मोक्ष जाता है तथा जो सात वर्ष एवं आठ वर्ष तक व्रत करता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी योग्यतापूर्वक उसी भवमें भी मोक्ष होता है। इस व्रतको अनन्तवीर्य और अपराजितने किया, सो वे दोनो चक्रवर्ती हुए। और विजयकुमार इस व्रतके प्रभावसे चक्रवर्तीका सेनापति हुआ। जरासिंधुने पूर्व जन्ममें यह व्रत किया, जिससे वह प्रति नारायण हुआ। जयकुमार सुलोचनाने व्रत किया जिससे वह अवधिज्ञानी होकर ऋषभनाथ भगवानका ७२ वां गणधर हुआ और उसी भवमें मोक्ष गये। सुलोचना भी आर्यिकाके व्रत धर कर स्त्रीलिंग छेद स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई। श्रीपालका भी उससे कोढ गया और उसी भवसे मोक्ष भी हुआ। अधिक कहां तक कहा जाय, इस व्रतकी महिमा कोटि जीभसे भी नहीं कही जासक्ती है।

इस प्रकार तीन, पांच या सात (आठ) वर्ष इस व्रतको करके उद्यापन करे, आवश्यकता हो तो नवीन जिनालय बनावे, सब संघको तथा विद्यार्थी जनोंको मिष्टान्न भोजन करावे, चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा पधरावे, शांति हवन आदि शुभ कार्य करे, प्रतिष्ठा करावे, पाठशाला बनावे, ग्रन्थोंका जीर्णोद्धार करे और प्रत्येक प्रकारके उपकरण आठ आठ मंदिरजीमें भेट करे इस प्रकार उत्साहसे उद्यापन करे। जो उद्यापनकी शक्ति न हो तो दूना व्रत करे इत्यादि। इस प्रकार राजा हरिसेनने व्रतकी विधि और फल सुनकर मुनिराजको नमस्कार किया और घर आकर कितनेक वर्षोंतक यथाविधि व्रत पालन करके पश्चात् संसार भोगोंसे विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली, सो तपके प्रभाव व शुक्लध्यानके बलसे चार घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशोंमें विहार कर भव्य जीवोंको संसारसे पार होनेवाले सच्चे जिन-मार्गमें लगाया। पश्चात् आयुके अंतमें शेष कर्मोंको नाशकर सिद्ध पद पाया। इस प्रकार यदि अन्य भव्य जीव भी इस व्रतका पालन करेंगे तो वे उत्तमोत्तम सुखोंको अपने अपने भावोंके अनुसार उत्तम गतियोंको प्राप्त होवेंगे। तात्पर्य, व्रतका फल तब ही होता है, जब कि मिथ्यात्व तथा क्रोध मान माया और लोभ आदि कषाय तथा मोहको मंद किया जाय। इस लिये इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

नंदीश्वर व्रत फल लियो, श्री हरिसेन नरेश। कर्मनाश शिवपुर गयो, नन्दू चरण हमेश ॥

रविव्रत कथा (आदित्यवार व्रत कथा)

काशी देशकी बनारस नगरीका राजा महीपाल अत्यन्त प्रजा वत्सल और न्यायी था। उसी नगरमें मतिसागर नामका एक सेठ और गुणसुंदरी नामकी उसकी स्त्री थी। इस सेठके पूर्व पुण्योदयसे उत्तमोत्तम गुणवान तथा रूपवान सात पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें छःका तो विवाह हो गया था, केवल लघुपुत्र गुणधर ही कुंवारे थे। सो गुणधर किसी दिन वनमें क्रीडा करते विचर रहे थे कि उनको गुणसागर मुनिके दर्शन हो गये। वहां मुनिराजका आगमन सुनकर और भी बहुत लोग वंदनार्थ वनमें आये थे और सब स्तुति वंदना करके यथास्थान बैठे। श्री मुनिराज उनको धर्मवृद्धि कह कर अहिंसादि धर्मोंका उपदेश करने लगे। जब उपदेश हो चुका तब साहूकारकी स्त्री गुणसुंदरी बोली—स्वामी, मुझे कोई व्रत दीजिये। तब मुनिराजने उसे पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतका उपदेश दिया और सम्यक्त्वका स्वरूप समझाया, और पीछेसे कहा बेटी! तू आदित्यवारका व्रत पाल। सुन, इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि अषाढ मासके पक्षमें प्रथम रविवारसे लेकर नव रविवारों तक यह व्रत करना चाहिये।

प्रत्येक रविवारके दिन उपवास करना या विना नमक (मीठा) के अलोना भोजन एकवार (एकासना) करना। पार्श्वनाथ भगवानकी पूजा अभिषेक करना। घरके सब आरम्भका त्याग कर विषय और कषाय भावोंको दूर करना, ब्रह्मचर्यसे रहना। रात्रि जागरण भजनादि करना और 'ॐ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथाय नमः' इस मंत्रका १०८ वार जाप करना। इस प्रकार नव वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करना। प्रथम वर्ष नव उपवास करना, दूसरे वर्ष नमक विना भात और पानी खाना, तीजे वर्ष नमक विना दाल भात खाना, चौथे वर्ष विना नमककी खिचडी खाना, पांचवें वर्ष विना नमककी रोटी खाना, छठें वर्ष विना नमक दही भात खाना, सातवें वर्ष तथा आठवें वर्ष नमक विना मूंगकी दाल और रोटी खाना, और नवमें वर्ष एक वारका परोसा हुआ (एकठाना) नमक विना भोजन करना फिर दूसरेवार नहीं लेना और थालीमें जूठ भी नहीं छोड़ना। नवधा भक्ति कर मुनिराजको भोजन कराना और नव वर्ष पूर्ण होनेपर उद्यापन करना। सो नव नव उपकरण मंदिरोंमें चढाना, नव शास्त्र लिखाना, नव श्रावकोंको भोजन कराना, नव नव फल नव घर श्रावकोंको बांटना, समोशरणका पाठ पढना, पूजन विधान करना इत्यादि। इस प्रकार गुणसुन्दरी व्रत लेकर घर

जाई, और सब कथा घरके लोगोंसे कह सुनाई। घरवालोंने सुनकर उस व्रतकी बहुत निंदा की। इसलिये उसी दिनसे उनके घरमें दरिद्रताका वास होगया, सब लोग भूखा मरने लगे, तब सेठके सातों पुत्र सलाह करके परदेशको निकले। सो साकेत नगरीमें (अयोध्या) जिनदत्त सेठके घर जाकर नौकरी करने लगे और सेठ सेठानी बनारसमें ही रहे। कुछ कालके पश्चात बनारसमें कोई अवधिज्ञानी मुनि पधारे सो दरिद्रतासे पीड़ित सेठ सेठानी भी वंदनाको गये, और दीन भावसे पूछने लगे—हे नाथ! क्या कारण है? कि हम लोग धनसे रंक होगये? तब मुनिराजने कहा, कि तुमने मुनि रविव्रतकी निंदा की है इसीसे यह दशा हुई है। यदि तुम पुनः श्रद्धा सहित उस व्रतको करो तो तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति तुम्हें फिर मिलेगी। सेठ सेठानीने मुनिको नमस्कार करके पुनः व्रत लिया, और श्रद्धा सहित पालन किया, जिससे उनको फिरसे धन धान्यादिकी अच्छी प्राप्ति होने लगी।

परन्तु उनके सातों पुत्र साकेतपुरीमें कठिन मजूरी करके पेट पालते थे। एक दिन लघु भ्राता गुणधर वनमें घास काटनेको गया था, सो शीघ्रतामें गट्ठा बांधकर घर चला आया और हसिया (दातड़ा) वहीं भूल आया। घर आकर उसने भावजसे भोजन मांगा। तब वह बोली लालाजी! तुम हसिया भूल आये हो, सो जल्दी जाकर ले आओ पीछे भोजन करना, अन्यथा हसिया कोई ले जायगा तो सब काम अटक जायगा, बिना द्रव्य नया दांतड़ा कैसे आवेगा? यह सुनकर गुणभद्र तुरत ही पुनः वनमें गये, तो देखा कि हसियापर एक सर्प मार लिपट रहा है।

यह देख वे बहुत दुखी हुये कि दातड़ा बिना लिये तो भोजन नहीं मिलेगा और दातड़ा मिलना कठिन होगया है। तब वे विनीत भावसे सर्वज्ञ वीतराग प्रभुकी स्तुति करने लगे। सो उनके एकाग्रचित्तसे स्तुति करनेके कारण धरणेन्द्रका आसन हिला, उसने समझा कि अमुक स्थानमें पार्श्वनाथ जिनेन्द्रके भक्तको कष्ट हो रहा है। तब करुणा करके पद्मावती देवीको आज्ञा की कि तुम जाकर प्रभुभक्त गुणधरका दुःख निवारण करो। यह सुनकर पद्मावती देवी तुरत वहां पहुंची, और गुणधरसे बोली, हे पुत्र तुम भय मत करो। यह सोनेका दातड़ा, और यह रत्नका हार तथा यह रत्नमई पार्श्वनाथ प्रभुकी बिंब भी ले जाओ, सो भक्ति भावसे पूजा करना, इससे तुम्हारा दुःख शोक दूर होगा। गुणधर देवीद्वारा प्रदत्त द्रव्य और जिन बिंब लेकर घर आये। तो प्रथम तो उनके भाई यह देखकर डरे, कि कहीं यह चुराकर

तो नहीं लाया है, क्योंकि ऐसा कौनसा पाप है जो भूखा नहीं करता है, परंतु पीछे गुणधरके मुखसे सब वृत्तान्त सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार दिनों दिन उनका कष्ट दूर होने लगा और थोड़े ही दिनोंमें वे बहुत धनी हो गये। पश्चात् उन्होंने एक बड़ा जिन मंदिर बनवाया, प्रतिष्ठा कराई, चतुर्विध संघको (चारो प्रकारका) यथायोग्य दान दिया। बड़ी प्रभावना की। जब यह सब वार्ता राजाने सुनी, तब उन्होंने गुणधरको बुलाकर सब वृत्तान्त पूछा, और अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी परम सुन्दरी कन्या गुणधरको ब्याह दी, तथा बहुतसा दान दहेज दिया। इस प्रकार वे बहुत वर्षों तक सातों भाई राज्य मान होकर सानन्द वहीं रहे, पश्चात् माता पिताका स्मरण करके अपने घर आये, और माता पितासे मिले। पश्चात् बहुत काल तक मनुष्योचित सुख भोगकर सन्यास पूर्वक मरण कर यथायोग्य स्वर्गादि गतिको प्राप्त हुए और गुणधर उससे तीसरे भव मोक्ष गये। इस प्रकार इस व्रतके प्रभावसे मतिसागर सेठका दरिद्र दूर हुआ, और उत्तमोत्तम सुख भोगकर उत्तम उत्तम गतियोंको प्राप्त हुए। जो और भव्य जीव श्रद्धा सहित बारह व्रतों पूर्वक इस व्रतको पालन करेंगे, वे भी उत्तम गति पावेंगे।

यह विधि रविव्रत फल लियो, मतिसागर गुणवान। दुःख दारिद्र नशो सकल, अन्त लह्यो निरवान ॥

पुष्पांजलि व्रत कथा।

नमों सिद्ध परमात्मा, सकल सिद्धि दातार। पुष्पांजलि व्रतकी कथा, कहूं भव्य सुखकार ॥

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तटपर मंगलावती देशमें रत्नसंचयपुर नामका एक नगर है। वहाका राजा वज्रसेन अपनी जयावती रानी सहित सानन्द राज्य करता था, परन्तु घरमें पुत्र न होनेके कारण उदास रहता था। सो एक दिन वह राजा जब रानी सहित जिन मंदिरमें दर्शन करनेको गया, तो वहां उसने ज्ञानसागर मुनिराजको बैठे देखा, और भक्ति सहित उनकी पूजा वंदना करके धर्मोपदेश सुना।

पश्चात् अवसर पाकर विनय सहित राजाने पूछा, हे प्रभु हमारी रानीके पुत्र न होनेसे यह अत्यन्त दुःखित

रहती है, सो क्या इसके कोई पुत्र होगा ? तब मुनिराजने विचार कर कहा, राजा चिंता न करो, इसके अत्यन्त प्रभावशाली पुत्र होगा, जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा।

यह सुनकर राजा रानी हर्षित होकर घर आये सुखसे रहने लगे, पश्चात् कुछ दिनोंके रानीको शुभ स्वप्न हुए, और एक देव स्वर्गसे रानीके गर्भमें आया और नव मास पूर्ण होनेपर रत्नशेखर नामधारी सुन्दर पुत्र हुआ। एक दिन रत्नशेखर अपने मित्रोंके साथ जब क्रीड़ा कर रहा था तब इसे आकाशमार्गसे जाते हुए मेघवाहन नामके विद्याधरने देखा सो देखते ही प्रेममे विह्वल होकर नीचे आया और राजपुत्रको अपना परिचय देकर उसका मित्र बन गया। ठीक है " पुण्यसे क्या नही होता है।"

पश्चात् राजपुत्रने भी उसे अपना परिचय देकर मेरु पर्वतकी वदना करनेकी इच्छा प्रगट की। तब मेघवाहन बोला, हे कुमार ! हमारे विमानमें बैठ कर चलो, परन्तु रत्नशेखरने यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि मुझे ही विमान रचनाकी विधि वा मंत्र बताओ। सो विद्याधरने ऐसा ही किया तब कुमारने मित्र विद्याधरकी सहायतासे ५०० विद्याएं साधीं पश्चात् मेघवाहनादि मित्रो सहित ढाई द्वीपके समस्त जिन मंदिरोंकी वदनार्थ प्रस्थान किया। सो विजयार्ध पर्वतके सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा स्तवन करके रंग मडपमें बैठा था, कि इतनेमें दक्षिण श्रेणी रथनूपुर नगरकी राजकन्या मदनमंजूषा भी दर्शनार्थ सखियो सहित वहा आई, और रत्नशेखरको देखकर मोहित हो गई, परंतु लज्जावश कुछ कह न सकी, और खेदित चित्त होकर घर लौट गई। राजा रानीने उसके खेदका कारण जानकर स्वयवर मडप रचा, और सब राजपुत्रोंको आमत्रण दिया, सो शुभ तिथिमें बहुतसे राजपुत्र वहां आये, और रत्नशेखर भी आया। जब कन्या वरमाला लेकर आई तो उसने रत्नशेखरके ही कंठमें वह वरमाला डाली। इसपर विद्याधर राजा बहुत बिगडे कि यह विद्याधरकी कन्या है भूमिगोचरीको नहीं व्याह सक्ती है परन्तु रत्नशेखरने उनको युद्धके लिये तत्पर देख सबको थोड़ी देरमें जीतकर यथास्थान विदा कर दिया। इनका पराक्रम देखकर बहुतसे राजा इनके आज्ञाकारी हुए, और वही इनको शुभोदयसे चक्ररत्नकी प्राप्ति भी हुई, तब छहो खण्डोंको वश करके व कुमार चक्रवर्ति पदसे भूपित होकर निज नगरमे आये और पितादि गुरुजनोसे मिलकर आनन्दसे राज्य करने लगे।

एक दिन राजा रत्नशेखर माता पिता सहित सुदर्शनमेरुकी वंदनाको गये थे सो वहा भाग्योदयसे दो चारण मुनियोको देखकर भक्तिपूर्वक वंदना स्तुति कर धर्मोपदेश सुना और अवसर पाकर अपने भवांतरोका कथन पूछा तथा यह भी पूछा, कि मदनमजूषा और मेघवाहनका मुझपर अत्यन्त प्रेम क्यो है ?

तब श्री मुनिने कहा—राजा सुनो ! इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र आर्यखण्डमें मृणालपुर नामका एक नगर है, वहा राजा जितारि और रानी कनकावती सुखसे राज्य करते थे। इसी नगरमें श्रुतकीर्ति नाम ब्राह्मण और उसकी बन्धुमती नामकी स्त्री रहती थी। इसके प्रभावती नामकी एक पुत्री थी जिसने जैन गुरुके पास शिक्षा पाई थी।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नीक वन क्रीडाको गया था, सो वहापर उसकी स्त्रीको सांपने काटा, और वह मर गई। तब ब्राह्मण अत्यन्त शोकसे विव्हल हो गया, और उदास रहने लगा। यह समाचार पाकर उसकी पुत्री प्रभावती वहां आई और अनेक प्रकारसे पिताको सम्बोधन करके बोली पिताजी ससारका स्वरूप ऐसा ही है। इसमें इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग प्रायः हुआ ही करते हैं। यह इष्टानिष्ट कल्पना मोह भावोंसे होती है, यथार्थमें न कुछ इष्ट है न अनिष्ट है। इसलिये शोकका त्याग करो।

पश्चात् प्रभावतीने अपने पिताको जैन गुरुके पास सम्बोधन कराकर दीक्षा दिला दी। सो ब्राह्मणने प्रारम्भमें तपश्चरण किया, परन्तु पश्चात चारित्रभ्रष्ट होकर यत्र मंत्र तंत्रादिके (व्यर्थके झगड़ो) में फंस गया। विद्याके योगसे नई वस्ती वसाकर उसमें घर माडकर रहने लगा और विषयाशक्त हो स्वच्छद प्रवर्तने लगा। तब पुनः प्रभावती उसे संबोधन करनेके लिये वहा गई और कहा, पिताजी, जिन दीक्षा लेकर इस प्रकार प्रवर्तना अच्छा नहीं है। इससे इस लोकमें निंदा और परलोकमें दुःख सहना पड़ेंगे। यह सुनकर ब्राह्मण कुपित हुआ और उसे वनमें अकेली छोड़ दी। सो जहा प्रभावती नमस्कार मत्र जपती हुई वनमें बैठी थी, वहा वनदेवी आई और पूछा बेटी तू क्या चाहती है ? तब प्रभावतीने कैलाशयात्रा करनेकी इच्छा प्रगट की। यह सुनकर देवीने उसे कैलाशपर पहुचा दिया। प्रभावती वहां भादो सुदी पाचमके दिन पहुंची थी, और उस दिन पुष्पांजलि व्रत था, इसलिये स्वर्ग तथा पातालवासी देव भी वहा पूजन वंदनादिके लिये आये थे। सो पद्मावतीदेवीने प्रभावतीका परिचय पाकर कहा—बेटी तू पुष्पांजलि व्रतकर इसमे तेरा सब दुःख दूर होगा।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादो सुदी ५ से ९ तक पांच दिन तक नित्य प्रति पंच मेरुकी स्थापना करके चौवीस तीर्थंकरोंकी अष्ट द्रव्यसे पूजाभिषेक करे, पांच अष्टक तथा पांच जयमाल पढे और 'ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धी अस्सी जिनालयेभ्यो नमः' इस मंत्रका १०८ वार जाप करे, पांचमका उपवास करे, और शेष दिनोंमें रस त्यागकर ऊनोदर भोजन करे। रात्रिको भजन जागरण करे, विषय कषायोंको घटावे, ब्रह्मचर्य रखे और घरका आरम्भ त्यागे। इस प्रकार पांचवर्ष तक व्रत करके फिर उद्यापन करे, सो प्रत्येक प्रकारके उपकरण पांच पांच जिनालयोंमें भेंट देवे, पांच शास्त्र पधरावे, पांच श्रावकोंको भोजन करावे, चारो प्रकारके दान देवे, इत्यादि। यदि उद्यापन करनेकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे।

इस प्रकार प्रभावतीने व्रतकी विधि सुनकर सहर्ष स्वीकार किया, और उसे यथाविधि ५ वर्ष तक पालन किया तथा उद्यापन भी किया इससे उसे बहुत शांति हुई। पश्चात् पद्मावतीदेवीने उसे विमानमें बैठाकर उसके नगर मृणालपुरमें पहुंचा दिया। वहां पहुंचकर प्रभावतीने स्वयंप्रभु गुरुके पास दीक्षा ली, और तप करने लगी, सो तपके प्रभावसे उसकी बहुत प्रशंसा फैली। यह प्रशंसा उसके पितासे सहन नहीं हुई, और उसने उसे दुःख देनेको विद्याएं भेजी। सो विद्याए बहुत उपसर्ग करने लगी, परन्तु प्रभावती रंच मात्र भी नहीं डिगी और अन्तमें समाधिमरण करके अच्युत स्वर्गमें देव हुई। उसका नाम पद्मनाभ हुआ।

इसी बीचमें मृणालपुरकी एक रुक्मणी नामकी श्राविका मरकर उसी देवकी देवी हुई। सो वे दोनो सुख पूर्वक कालक्षेप करने लगे। एक दिन उस पद्मनाभ देवने विचारा, कि हमारा पूर्वजन्मका पिता मिथ्यात्वमें पड़ा है उसे सम्बोधन करना चाहिये। यह विचार कर उसके पास गया और अपना सब वृतान्त कहा। सो सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ, और सब प्रपंच छोड़कर शांत चित्त हुआ। पश्चात जिनोक्त तपश्चरण किया, और समाधिसे मरण कर स्वर्गमें प्रभासदेव हुआ।

सो वह पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर तू रत्नशेखर चक्रवर्ति हुआ है, और पद्मनाभकी देवी तेरी मदनमंजूषा नामकी पट्टरानी हुई है। तथा प्रभासदेव वहांसे चयकर यह तेरा मित्र मेघवाहन विद्याधर हुआ है। सो हे राजा! तूने पूर्वजन्ममें पुष्पांजलि व्रत किया जिसके फलसे स्वर्गके सुख भोगकर यहां चक्रवर्ति हुआ है, और ये दोनो भी तेरे पूर्व जन्मके सम्बन्धी हैं। इससे इनका तुझपर परम स्नेह है।

यह सुनकर राजाने पुष्पांजलि व्रत धारण किया और यात्रा करके घर आया। विधि सहित व्रत किया, पश्चात् बहुत काल तक राज्य करके संसारसे विरक्त होकर निज पुत्रको राज्यभार सौंपकर जिन दीक्षा ले ली और घोर तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अनेक भव्य जीवोंको धर्मोपदेश दिया। पश्चात् शेष कर्मोंको नाश करके मोक्ष पद प्राप्त किया। मदनमंजूषाने भी दीक्षा ले ली सो तपकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। मेघवाहन आदि अन्य राजा भी यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए, इस प्रकार और भी भव्य जीव श्रद्धा भक्ति सहित व्रत पालें तथा कषायोंको कृश करेंगे वे भी उत्तमोत्तम पदको प्राप्त होंगे।

पुष्पांजलि व्रत पालकर, प्रभावती गुणमाल। लहो सिद्ध पद अन्तमें, नमों त्रियोग सम्हाल॥

बारह सौ चौंतीस व्रतकी कथा।

बन्दूं आदि जिनेन्द्र पद, मन बच तन सिर नाय। बारह सौ चौंतीस व्रत, कथा कहूं सुखदाय॥

मगध देशमें राजगृही नगरका स्वामी राजा श्रेणिक न्याय पूर्वक राजशासन करता था। इसकी परम सुन्दरी और जिनधर्मपरायणा श्रीमती चेलना पट्टरानी थी सो जब विपुलाचल पर महावीर भगवानका समोशरण आया तब राजा प्रजा सहित वंदनाको गया और वंदना स्तुति करके मनुष्योंकी सभामें बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगा। पश्चात् राजाने पूछा—हे प्रभो! षोडस कारण व्रतसे तो तीर्थंकर पद मिलता ही है। परंतु क्या अन्य प्रकार भी मिल सकता है सो कृपाकर कहिये? तब गौतम स्वामीने कहा राजन् सुनो—जम्बूद्वीपके आसपास लवण समुद्र है सो इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रके आर्यखंडमें अवंती देश है। वहां उज्जैनी नगरी है, वहां हेमवर्मा राजा अपनी शिवसुन्दरी रानी सहित राज्य करता था। एक दिन राजा वनक्रीड़ा करनेको वनमें गया था, और वहां चारण मुनियोंको देखकर नमस्कार किया तथा मनमें समता भाव धरकर विनय सहित पूछने लगा, भगवन् कृपा करके यह बताइये कि मैं किस प्रकार तीर्थंकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करूं? तब श्री गुरुने कहा, राजन्! तुम बारह सौ चौंतीस व्रत करो। यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदा १ से प्रारम्भ होता है, इसमें १२३४ उपवास तथा एकाशन करना चाहिये, यह व्रत दश वर्ष और साढे तीन माहमें पूरा होता है और

एकान्तर करे तो ५ वर्ष पौने दो मासमें ही पूर्ण हो जाता है। व्रतके दिन रस त्यागकर व नीरस भोजन करे, आरंभ परिग्रहका त्याग कर भक्ति और पूजामें निमग्न रहे और 'ॐ ह्रीं असियाउसा चारित्र शुद्धि व्रतेभ्यो नमः' इस मंत्रका १०८ जाप करे। जब व्रत पूरा हो जावे, तब उद्यापन करे। झारी, थाली, कलश आदि उपकरण चैत्यालयमें भेंट करे, चौसठ ग्रन्थ पधरावे। चार प्रकारका दान करे, तथा १२३४ लाडू श्रावकोंके घर बांटे, पाठशालादि स्थापन करे, इत्यादि। और यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। इस प्रकार राजाने व्रतकी विधि सुनकर उसे यथाविधि पालन किया, उद्यापन भी किया, अन्तमें समाधि मरण करके अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे चयकर वह विदेह क्षेत्रकी विजया पुरीमें धनजय राजाके यहां चन्द्रभानु प्रभु नामका तीर्थंकर पदधारी पुत्र हुआ। उसके गर्भादिक पांच कल्याणक हुए। इस प्रकार राजा हेमवर्मा स्वर्गके सुख भोगकर तीर्थंकर पद प्राप्त करके इस व्रतके प्रभावसे मोक्ष गया। इसलिये हे राजा श्रेणिक! तीर्थंकर पद प्राप्त करनेके लिये यह व्रत भी एक साधन है। यह सुनकर राजा श्रेणिकने भी श्रद्धा सहित इस व्रतको धारण किया और षोडस कारण भावनाएं भी भाई सो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। अब आगामी चौबीसीमें वे प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार और भी जो भव्य जीव इस व्रतका पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको पाकर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

बारह सौ चौंतीस व्रत, हेमवर्म नृपपाल। नर सुरके सुख भोगकर, लही मुक्ति गुणमाल ॥

औषधि दान कथा।

जन्म जरा अरु मरणके, रोग रहित जिन देव। औषधि दान तनी कथा, कहूं करूं तिन सेव ॥

सोरठ देशमें द्वारका नगरी है। वहां नवमें नारायण श्री कृष्णचन्द्र राज्य करते थे। इनके सत्यभामा तथा रुक्मणी आदि सोलह हजार रानियां थीं जो कि परस्पर बहिन भावसे (प्रेम पूर्वक) रहती थीं। श्री कृष्णराय प्रजापालन और नीति न्यायादि कार्योंमें सम्पन्न थे। एक दिन ये श्री कृष्णजी स्वजनों सहित श्री नेमिनाथ प्रभुकी वंदनाको जारहे थे कि मार्गमें एक मुनि अत्यन्त क्षीण शरीरी ध्यानस्थ खे

साथवाले वैद्यसे कहा कि तुम रोगका निदान करके उत्तम प्रासुक औषध तैयार करो जो कि श्री मुनिरायको आहारके साथ दी जाय, जिससे रोग मिटकर उनके रत्नत्रयकी वृद्धि हो।

वैद्यने राजाकी आज्ञा प्रमाण औषधि तैयार की और जब श्री मुनिराज चर्याको निकले तो कृष्णरायने विधि पूर्वक पड़गाह कर नवधा भक्ति सहित श्री मुनिरायको भोजनके साथ, औषधि युक्त तय्यार किये हुए लड्डूका आहार दिया, जिससे कृष्णरायके घर पचाश्चर्य हुए और औषधिका निमित्त पाकर मुनिराजका रोग भी उपशम हुआ। श्री कृष्णजीने औषधि दानके प्रभावसे (वात्सल्य भावके कारण) तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया।

किसी एक दिन श्री कृष्णराय पुनः मुनि दर्शनको गए सो भाग्यवशात् वे ही मुनि एक शिलापर ध्यानस्थ दिखाई दिये। तब भक्ति सहित वंदना करके राजाने मुनिराजके शरीरकी कुशल पूछी। तब शरीरसे सर्वथा निष्प्रेम उन मुनिराजने कहा—राजन्! शरीर तो क्षणभंगुर है, इसकी कुशल अकुशलता ही क्या? ज्ञानी पुरुष इसे पर वस्तु जानकर इसमें ममत्व भाव नहीं रखते हैं। नाशवान देह तो किसी दिन निश्चयसे नष्ट होवे ही गी और यह आत्मा तो अविनाशी टंकोत्कीर्ण स्वभावसे ज्ञाता दृष्टा है। सो उसको पुद्गलादि पर पदार्थ कुछ भी बाधा नहीं पहुंचा सक्ते हैं इत्यादि। इस प्रकार मुनिराजके वचनोंसे राजाको बहुत आनन्द हुआ परन्तु वह वैद्य जिसने औषधि बनाई थी, अपनी प्रशंसा न सुनकर तथा औषधि प्रयोगपर उपेक्षा भाव देखकर कुपित हुआ और मुनिकी कृतघ्नी आदि शब्दोंमें निंदा करने लगा। इससे तिर्यंच आयुका बन्ध करके उसी वनमें बन्दर (कपि) हुआ सो एक दिन जब कि वह बन्दर (वैद्यका जीव) वनमें एक वृक्षसे उछल कर दूसरेपर और दूसरेसे तीसरे वृक्षपर जा रहा था, तब पवनके वेगसे उस वृक्षकी एक डाली जिसके नीचे मुनिराज बैठे थे टूटकर उनपर पड़ी और उससे एक बड़ा घाव मुनिके शरीरमें हो गया, जिससे रक्त बहने लगा। यह देखकर वह बन्दर कौतुकवश वहा आया और देखा कि मुनिराजके ऊपर वृक्षकी एक बड़ी डाल गिर पड़ी है और उससे घाव होकर लोहू बह रहा है। मुनिको देखकर बन्दरको जाति स्मरण होगया जिससे उसने जाना कि पूर्वभव में वैद्य था, और मैंने इन्हीं मुनिराजकी औषधि की थी परन्तु उनके मुखसे अपनी प्रशंसा न सुनकर मैंने मान कषायवश उनकी निंदा की थी जिससे कि मैं बन्दरकी योनिको प्राप्त हुआ हूं।

यह विचार कर उस बन्दरने तुरन्त ही मुनिराजके ऊपरसे ज्यों त्यों करके वह वृक्षकी डाली अलग कर दी। और जड़ीबूटी (औषधि) लाकर मुनिके घावपर लगाई, जिससे मुनिराजको आराम हुआ।

पश्चात् मुनिराजने उसे धर्मोपदेश दिया और अणुव्रत ग्रहण कराये सो उसने व्रत पूर्वक आयुके अन्तमें सात दिन पहिले सन्यास धारण किया, सो प्राण त्यागकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

इस प्रकार औषधि दानके प्रभावसे श्रीकृष्णने तीर्थंकर प्रकृति बांधी और बन्दर भी अणुव्रत ग्रहण कर स्वर्ग गया। यदि अन्य भव्य जीव इसी प्रकार आहार, औषधि, अभय और विद्यादानमें प्रवृत होंगे तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त करेंगे।

औषधिदान प्रभावसे, श्री कृष्ण नरराय। अरु कपि पायो विमल सुख, देहु सबहि मन लाय॥

—⊖⊖—

१४ धन लोभ रखनेवालेकी कथा।

वीतरागके पद नमूं, नमूं गुरु निर्ग्रन्थ। जा प्रसाद सब लोभ नश, मिले मुक्तिका पन्थ॥

कंपिला नगरीमें रत्नप्रभ राजा राज्य करता था उसकी रानी विद्युतप्रभा थी। इसी नगरमें जिनदत्त और पिण्याकगंध नामके दो साहूकार थे। जिनदत्त तो धर्मात्मा और उदारचित्त था, परन्तु पिण्याकगंध बड़ा लोभी और पापी था, इसकी स्त्री भी इसीके समान थी।

एक समय राजाने नगरमें तालाब खोदनेकी आज्ञा की सो तालाब खुदने लगा। जब कुछ गहरा खुदा तो उसमेंसे बहुतसे सोनेके खम्भे निकले, जो मिट्टीमें दबे रहनेके कारण मैले हो रहे थे और लोहेके समान प्रतीत होते थे।

सो मजूर लोग उन्हें उठाकर बेचने ले गये। एक खम्भा इनमेका सेठ जिनदत्तने भी लिया और जब पीछे जांच की तो सोनेका निकला, परंतु मूल्य लोहेका दिया था, तब शेष द्रव्यको अपनी न समझ कर उसने धर्म कार्योंमें लगा दी। इस प्रकार वह पर धनमें निवृत्त लोभ होकर सानन्द रहने लगा।

परतु पिण्याकगध जिसने बहुतसे खम्मे लोहेकी कीमतमें ले रखे थे और सोनेके जानता भी था उसने द्रव्यमें मोहित होकर उनको सचित कर रखे।

एक दिन राजा तालाव देखनेको गया और एक खम्मा और भी पड़ा देखा सो जाच करने पर सोनेका प्रतीत हुआ। इसके पीछे और भी खुदाया तो वही एक पेटी जिसमें ताम्रपत्र था निकली। उस ताम्रमें १०० खम्भोंकी वात लिखी थी। तब राजाने शेष खम्भोंकी तलाश की तो मालूम हुआ कि एक खम्भा तो जिनदत्त सेठने मोल लिया है, और ९८ पिण्याकगन्धने लिये है।

राजाने दोनो सेठोंको बुलवाया सो जिनदत्त सेठने तो स्वीकार कर लिया और उस खम्भेसे उत्पन्न द्रव्यका हिसाव राजाको दिखाकर निर्दोषरीत्या छुटकारा पागया। इतना ही नहीं राजाने उसकी सचाईसे प्रसन्न होकर उसकी प्रशसा की और पारितोषिक भी दिया। परन्तु पिण्याकगन्धने स्वीकार नहीं किया, इससे राजाने उसके घरका सब द्रव्य लुटवा लिया। वे ९८ सोनेके खम्मे जो लोहेकी कीमतमें लिये थे सो तो गये ही, परन्तु साथमें और भी ३२ करोड रुपयोंकी सम्पत्ति भी गई।

पिण्याकगन्ध इस दुःखको सहन करनेमें असमर्थ था इसलिये उसने अपने पाव पर पत्थर पटक कर आत्मघात कर प्राण छोडे और मरकर रौद्रध्यानसे छठवें नर्कमें गया।

जिनदत्त सेठ यह चरित्र देखकर विरक्त होगया और तपकर आयुके अन्तमें समाधिसे मरण करके स्वर्गमें देव हुआ। वास्तवमें लोभ बुरी वस्तु है और तो क्या दशम गुणस्थानका अव्यक्त लोभका उदय भी श्रेणी नहीं चढ़ने देता है। और उपशम हुआ भी उपशांत मोही मुनिको ११ वें गुणस्थानसे प्रथम गिरा देता है। कविने कहा भी है "लोभ पापका बाप बखाना" इसी लोभसे सत्यघोष भी मरकर राजाके भण्डारका साप हुआ था। और भी जो इस प्रकारका पाप करता है उसे परभवमें तो दुःख होता ही है परन्तु इस भवमें भी राजा व पंचोंसे दडित होता है व दुःख पाता है, अपनी प्रतीति खो बैठता है, इसलिये पर धनका लोभ त्यागनेसे भी निशंकता और सुख होता है।

पिण्याकगन्ध नरकहिं गयो, परधन लोभ पसाय। स्वर्ग गये जिनदत्तजी परधन लोभ नशाय॥

पंच परमेष्ठीका आरती ।

राग गौरी ।

पच परमगुरु भाये, मो मन पंच परमपद भाये । जिन ध्याये पाप नशाये, मो मन पच परमगुरु भाये ॥

गुरु ध्यान धर घाति कर्म हर केवलज्ञान उपाये । वीतराग गुण छ्यालिस धारी हित उपदेश सुनाये ॥ मो मन० ॥ १ ॥

नाश अघाति भये अविनाशी, निर्मल सिद्ध कहाये । लोक शिखरपर जाय विराजे आवागमन नशाये ॥ मो मन० ॥ २ ॥

छत्तिस गुणके धारी मुनिवर सकल सबके राये । दीक्षा शिक्षा दायक गुरु आचार्य परमेष्ठी कहाये ॥ मो मन पच० ॥ ३ ॥

ग्यारह अङ्ग, चतुर्दश पूरव, पाठ पढत दर्पाये । पढत पढावत ज्ञान बढावत उपाध्याय गुण गाये ॥ मो मन० ॥ ४ ॥

आठ वीस गुणधारी स्वामी परम दिगम्बर काये । आप तरें पर तारन हारे, साधु परमेष्ठी मनाये ॥ मो मन० ॥ ५ ॥

ऐसे पच परम पद जो भवि ध्यावे मन वच काये । मव भवके तिन पाप 'दीपचन्द' क्षणमें जात नशाये ॥

॥ मो मन पंच परम पद भाये ॥ ६ ॥

समाप्त